अपनी ज़बान

(सांप्रदायिकता विरोधी कविताओं का संग्रह)

हमारे समय की
लोकतान्त्रिक और धर्मनिरपेक्ष परंपरा को समर्पित

सम्पादन

विष्णु नागर
असद ज़ैदी



सहमत

प्रकाशकः
सफ़दर हाशमी मेमोरियल ट्रस्ट
8, विट्ठलभाई पटेल हाउस, रफ़ी मार्ग, नई दिल्ली-110001
फोनः 3611276

पहला संस्करणः 1994

मूल्यः 30 रूपये

सज्जाः पार्थिव शाह

'सहमत' के लिए 'तूलिका' द्वारा मुद्रित

प्रस्तावना

यह संकलन मुख्यतः उन चुने हुए सांप्रदायिकता विरोधी गीतों, गज़लों, दोहों, कविताओं का है जिन्हें 'सहमत' ने जुलाई, 1992 में समाचारपत्रों में विज्ञापन देकर मंगवाया था। हजारों की तादाद में हिन्दी और उर्दू के रचनाकारों ने 'सहमत' को अपनी रचनाएँ भेजी थीं। इसके अलावा 'सहमत' ने प्रतिष्ठित रचनाकारों से भी रचनाएँ आमंत्रित की थीं। इनमें से चुनी हुई रचनाओं का संग्रह 15 अगस्त 1992 तक अयोध्या में आयोजित 'सहमत' के कार्यक्रम के साथ ही प्रकाशित होना था। तब आयोजन की व्यस्तताओं के कारण यह काम पूरा नहीं हो पाया। लेकिन उसके तुरन्त बाद 'सहमत' की 'हम सब अयुध्या' प्रदर्शनी को लेकर हिन्दू सांप्रदायिक तत्वों ने दुर्भाग्यपूर्ण विवाद आरंभ कर दिया। उसके चलते यह काम अधूरा रहा। इसलिए 'सहमत' इस वायदे को अब पूरा कर पा रहा है।

कठिन समय में हजारों की तादाद में सांप्रदायिकता विरोधी रचनाओं का आना अपने आप में एक शुभ संकेत था। इससे तभी जाहिर हो गया था कि हिन्दी प्रदेशों के गाँवों-कस्बों-शहरों में सांप्रदायिक ताकतों की पैठ उतनी गहरी नहीं है जितनी कि वह प्रचार माध्यमों से नजर आती है। मिलीजुली संस्कृति की हमारी हज़ारों साल की परंपराएँ नष्ट करने की तमाम कोशिशों के बावजूद जीवित एवं सक्रिय हैं। यह बात हिन्दी प्रदेशों में नवंबर में संपन्न विधानसभा चुनावों से प्रकट और स्थापित हुई है।

'सहमत' को हजारों की तादाद में रचनाएँ भेजने वाले रचनाकारों की सांप्रदायिकता विरोध के प्रति निष्ठा भविष्य के लिए भी बहुत उत्साहित एवं प्रेरित करने वाली है। लेकिन बहुत चाहकर भी हम 'सहमत' को प्राप्त अधिकतर रचनाओं का उपयोग इस संकलन में नहीं कर पाये हैं। इनमें से एक छोटा चयन ही हम यहाँ दे पा रहे हैं। जिनकी रचनाएँ यहाँ नहीं हैं वे भी शायद इस संग्रह में अपनी रचनाएँ न होने से बहुत निराश न हों क्योंकि हमने अपनी ओर से अपेक्षया बेहतर रचनाएँ देने का प्रयास किया है। वैसे भी प्राप्त होने वाली हर रचना को शामिल करना संभव न था। इस संग्रह को तैयार करते समय मूल दृष्टि यह रही है कि उसमें ऐसी रचनाओं का संकलन किया जाए जिनका सांप्रदायिकता विरोधी अभियान में इस्तेमाल किया जा सके। जिन्हें समझने और ग्रहण करने में आम लोगों को कठिनाई न हो। कविता कला की अपनी सूक्ष्मताएँ पाठकों/श्रोताओं से तुरन्त संवाद में बाधा न बनें। गीतों-गजलों-दोहों का बड़ी तादाद में संकलन इसी नज़र से किया गया है। वैसे भी हिन्दी में शायद इस तरह के संकलन ज्यादा नहीं हैं जिनमें सांप्रदायिकता

प्रकाशक:
सफ़दर हाशमी मेमोरियल ट्रस्ट
8, विट्ठलभाई पटेल हाउस, रफ़ी मार्ग, नई दिल्ली-110001
फोन: 3611276

पहला संस्करण: 1994

मूल्य: 30 रुपये

सज्जा: पार्थिव शाह

'सहमत' के लिए 'तूलिका' द्वारा मुद्रित

प्रस्तावना

यह संकलन मुख्यतः उन चुने हुए सांप्रदायिकता विरोधी गीतों, गज़लों, दोहों, कविताओं का है जिन्हें 'सहमत' ने जुलाई, 1992 में समाचारपत्रों में विज्ञापन देकर मंगवाया था। हजारों की तादाद में हिन्दी और उर्दू के रचनाकारों ने 'सहमत' को अपनी रचनाएँ भेजी थीं। इसके अलावा 'सहमत' ने प्रतिष्ठित रचनाकारों से भी रचनाएँ आमंत्रित की थीं। इनमें से चुनी हुई रचनाओं का संग्रह 15 अगस्त 1992 तक अयोध्या में आयोजित 'सहमत' के कार्यक्रम के साथ ही प्रकाशित होना था। तब आयोजन की व्यस्तताओं के कारण यह काम पूरा नहीं हो पाया। लेकिन उसके तुरन्त बाद 'सहमत' की 'हम सब अयुध्या' प्रदर्शनी को लेकर हिन्दू सांप्रदायिक तत्वों ने दुर्भाग्यपूर्ण विवाद आरंभ कर दिया। उसके चलते यह काम अधूरा रहा। इसलिए 'सहमत' इस वायदे को अब पूरा कर पा रहा है।

कठिन समय में हजारों की तादाद में सांप्रदायिकता विरोधी रचनाओं का आना अपने आप में एक शुभ संकेत था। इससे तभी जाहिर हो गया था कि हिन्दी प्रदेशों के गाँवों-कस्बों-शहरों में सांप्रदायिक ताकतों की पैठ उतनी गहरी नहीं है जितनी कि वह प्रचार माध्यमों से नजर आती है। मिलीजुली संस्कृति की हमारी हज़ारों साल की परंपराएँ नष्ट करने की तमाम कोशिशों के बावजूद जीवित एवं सक्रिय हैं। यह बात हिन्दी प्रदेशों में नवंबर में संपन्न विधानसभा चुनावों से प्रकट और स्थापित हुई है।

'सहमत' को हजारों की तादाद में रचनाएँ भेजने वाले रचनाकारों की सांप्रदायिकता विरोध के प्रति निष्ठा भविष्य के लिए भी बहुत उत्साहित एवं प्रेरित करने वाली है। लेकिन बहुत चाहकर भी हम 'सहमत' को प्राप्त अधिकतर रचनाओं का उपयोग इस संकलन में नहीं कर पाये हैं। इनमें से एक छोटा चयन ही हम यहाँ दे पा रहे हैं। जिनकी रचनाएँ यहाँ नहीं हैं वे भी शायद इस संग्रह में अपनी रचनाएँ न होने से बहुत निराश न हों क्योंकि हमने अपनी ओर से अपेक्षया बेहतर रचनाएँ देने का प्रयास किया है। वैसे भी प्राप्त होने वाली हर रचना को शामिल करना संभव न था। इस संग्रह को तैयार करते समय मूल दृष्टि यह रही है कि उसमें ऐसी रचनाओं का संकलन किया जाए जिनका सांप्रदायिकता विरोधी अभियान में इस्तेमाल किया जा सके। जिन्हें समझने और ग्रहण करने में आम लोगों को कठिनाई न हो। कविता कला की अपनी सूक्ष्मताएँ पाठकों/श्रोताओं से तुरन्त संवाद में बाधा न बनें। गीतों-गजलों-दोहों का बड़ी तादाद में संकलन इसी नज़र से किया गया है। वैसे भी हिन्दी में शायद इस तरह के संकलन ज्यादा नहीं हैं जिनमें सांप्रदायिकता

विरोधी रचनाएँ काव्य-अभिव्यक्ति के विभिन्न लोकप्रिय रूपों में एकसाथ मिलती हों। यह संकलन इस अभाव को भी शायद पूरा करता है।

इस संग्रह में हमने अपने समय के सम्मानित और वरिष्ठ कवियों (स्वर्गीय) शमशेर बहादुर सिंह, नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री तथा शील की रचनाएँ भी यहाँ दी हैं। कवि और मनुष्य के रूप में इन्होंने हमेशा इस देश के साधारण जन की समस्याओं से अपने को जोड़ा है। इनकी अधिकांश कविताओं के विषय साधारण जीवन से, उसकी समस्याओं-संघर्षों से जुड़े रहे हैं। साहित्य में भी इन्हें जो सम्मान प्राप्त है उसकी वजह साधारण जन से उनका यह जुड़ाव ही है। इनकी विशिष्टता इस बात में भी है कि इन्होंने प्रचलित काव्य रूपों को एक नया रूप, नया आयाम अपनी कविताओं में दिया है। उनकी रचनाओं को इस संग्रह में स्थान देने का कारण यही है।

कुछ अन्य महत्वपूर्ण समकालीन कवियों की कविताएँ भी यहाँ हैं। उनकी जो कविताएँ कम से कम यहाँ संकलित हैं वे पाठक से सीधे संवाद स्थापित करती हैं। यही वह वजह है कि ये रचनाएँ इस संकलन में हैं। सांप्रदायिकता विरोधी अभियानों में ऐसी कविताओं का भी उपयोग होना चाहिए। इस बात की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करने के लिए इन्हें यहाँ दिया गया है।

इस तरह यह कविता संग्रह जाने-अनजाने हमारे समय में प्रचलित विभिन्न काव्य रूपों का संगम बन गया है लेकिन इसमें एक अंतर्धारा है—सांप्रदायिकता विरोध की। इसके लिए हम पुनः 'सहमत' की ओर से हिन्दी-उर्दू के उन सभी रचनाकारों का आभार व्यक्त करना चाहते हैं जिन्होंने बेहद उत्साहपूर्वक रचनाएँ भेजीं। इतनी बड़ी तादाद में उनकी रचनाएँ न आतीं तो विलम्ब से ही सही—इस तरह के संकलन के प्रकाशन का उत्साह 'सहमत' को न होता। समकालीन कवियों-कथाकारों के जो संग्रह इस संकलन के साथ ही 'यह ऐसा समय है', तथा 'आज का पाठ' शीर्षक से प्रकाशित हैं, उनकी पृष्ठभूमि भी कहीं-न-कहीं इन हजारों रचनाकारों के उत्साह से तैयार हुई है।

इस चयन में चंचल चौहान का विशेष सहयोग हमें मिला है। हम उनके आभारी हैं।

विष्णु नागर
असद ज़ैदी

विषय सूची

अजय कुमार सिंह

कविता की पंक्ति

उड़ा क्यों नहीं देते मेरे शब्द
निढाल पड़े बच्चे के चेहरे से भिनभिनाती मक्खियाँ
इथियोपिया के तंबू में
सारा शरीर जिसका
समाया रहता है तरबूज़े-से सिर
और सारे प्राण
बड़ी-बड़ी निरीह हिंगोटे-सी आंखों में
ताकती रहती हैं जो
भूखे मस्तिष्क के आदेश को
न मानते निश्चल अपने हाथ
छीन क्यों नहीं लेते मेरे शब्द
आततायियों के हाथों से
मनुस्मृति के श्लोकों की बेरहम तलवार
बना क्यों नहीं देते मेरे शब्द
हरिजनों की आह को
मानवीय अधिकारों की विवेकशील हुँकार
बुझा क्यों नहीं देते मेरे शब्द
बस्तियों को जलाती वहशी आग
सावन बन बरस क्यों नहीं पड़ते मेरे शब्द
क्यों नहीं गाते ये कोई मल्हार

काश, मेरे शब्द
नेता की डकार बन विलीन हो जाने से बच जाते
काश मेरे शब्द
अफ़सरों के कोट पर
गर्द की हल्की पर्त भर बनकर न रह जाते
काश मेरे शब्द खोखले न होते
काश ये रांगा बन धँस जाते किन्हीं देहों में
काश ये किन्हीं दिलों को छू पाते

काश कुछ दिल इन्हें छू लेते
होली-सी जल उठती कविता की पंक्ति

राख हो जाएँगे क्या एकदम
बेशुमार लोगों के बेशुमार शब्द
एकतरफ़ा ही रहेगा क्या संग्राम
सूरज-सी चमकेगी नहीं क्या कविता की पंक्ति
हवा-सी बहेगी नहीं क्या कविता की पंक्ति
पानी-सी प्यास नहीं बुझाएगी क्या कविता की पंक्ति
अनाज बन भूख नहीं मिटाएगी क्या कविता की पंक्ति

क्या फिर कभी नहीं आएगी कविता की पंक्ति

अदम गोंडवी

ग़ज़लें

भुखमरी, बेरोज़गारी, तस्करी के एहतिमाम
सन सतासी नज़्र कर दें, मज़हबी दंगों के नाम

दोस्त, मलियाना के पसमंज़र में जाके देखिए
दो क़दम हिटलर से आगे है ये जम्हूरी निज़ाम

है इधर फ़ाक़ाकशी से रात का कटना मुहाल
रक़्स करती है उधर स्कॉच की बोतल में शाम

बम उगायेंगे 'अदम' दहक़ान गंदुम के एवज़
आप पहुंचा दें हुकूमत तक हमारा ये पयाम

हिंदू या मुस्लिम के अहसासात को मत छेड़िए
अपनी कुरसी के लिए जज़्बात को मत छेड़िए

हममें कोई हूण, कोई शक, कोई मंगोल है
दफ़्न है जो बात, अब उस बात को मत छेड़िए

हैं कहाँ हिटलर, हलाकू, ज़ार या चंगेज़ खाँ
मिट गये सब, क़ौम की औक़ात को मत छेड़िए

छेड़िए इक जंग, मिल-जुल कर ग़रीबी के ख़िलाफ़
दोस्त, मेरे मज़हबी नग़मात को मत छेड़िए

मेरी नज़्मों में मशीनी दौर का अहसास है
भूख के शोलों में जलती क़ौम का इतिहास है

खोखले नारों की शबनम से वो बुझ पाएगी क्या
जिसके होंठों पर मुकम्मल इक सदी की प्यास है

क्या किया दिल्ली ने उन ख़ानाबदोशों के लिए
सर्दियों में जिनके सर पे छत खुला आकाश है

चंद सिक्कों के एवज़ ईमान बेचा जा रहा
ये हमारे देश की संसद है या नख़्ख़ास है

मज़हबी दंगों के शोलों में शराफ़त जल गई
फ़न के दोराहे पे नंगी द्रोपदी की लाश है

अनामिका शिव

समय का शाप

किसी भी दिन
जब पापा दुकान से लौटकर आयेंगे
हममें से किसी को भी जीवित नहीं पायेंगे
ममी की कलाई
चूड़ियों समेत कटी होगी
और मेरे कान बालियों समेत उखाड़े गये होंगे
पिंकी रिंकी की आँख
फटी की फटी रह गई होगी
पड़ोसी किस्सागोई के अंदाज़ में
सब कुछ बतायेंगे
पापा जब दुकान से लौटकर आयेंगे।

अब्दुल बिस्मिल्लाह

दोहे

हाट लगा है धर्म का भक्त जनन की छूट।
जान माल सब है यहाँ, लूट सकै जो लूट।।

राजा पंडित मौलवी, सब मिलि कीन्हीं घात।
जीभ निकाले आ रही, महाकाल की रात।।

नाच रहा है ईश्वर, बदल-बदल कर भेस।
कलप रही हतभागिनी, धरती खोले केस।।

जूठी हड्डी फेंक कर, औ, कुत्तों को टेर।
अपने अपने महल में सोये पड़े कुबेर।।

ऐसी लीला मत करो, अरजी है भगवान।
मन्दिर मस्जिद खड़े हों, बस्ती हो वीरान।।

घर आँगन मातम मचे, धरती पड़े दरार।
ना चहिए ऐसे हमें, कलश और मीनार।।

सजन तुम्हारे गांव-घर, है कैसी अंधेर।
राम-खुदा की जंग में, हुए पखेरू ढेर।।

बन्दा मस्जिद चाहता, मन्दिर चाहे भक्त।
ना कुछ चाहन हार का, बहे सड़क पर रक्त।।

सूरज हिन्दू, चन्दा मुस्लिम, तारो की क्या जात।
किसकी साजिश ये बेचारे, टूटें आधी रात।।

डाल डाल पर खुदा लिखा औ' पात-पात पर राम।
कौन चिरइया असगुन बोली, जगल जला तमाम।।

अमित यादव

वे कौन थे ?

वे आपस में लड़ते भी थे
नज़दीक भी आते थे
ग़म में

वे कौन थे
मैं नहीं जानता।

हाँ मैं
जानता हूँ इतना कि
वे एक धर्म के नहीं थे।

वो दिन
मुझे याद है
वे सवेरे चाय साथ-साथ पी रहे थे
और शाम को,
उनकी लाशें पास-पास पड़ी थीं।

मैं नही जानता कि
वो कौन थे?

अर्जुनलाल कवि

साम्प्रदायिकता-विरोधी दोहे

हिन्दू तौ हिन्दू जनै, मुस्लिम मुस्लिम मानि।
ना कोई मानव जनै, हैगौ बाँझ जहान।।

अर्जुन मजहब सब बुरे, भेद-भाव फैलाँय।
इनते जादा वे बुरे, जो अच्छौ बतलाँय।।

मुस्लिम कह अल्ला रचा, हिन्दू कह रचि राम।
जगत एक, को-को रचा, सब झूठे पैगाम।।

सबै भूमि भरि दिजिए, मजहबी भवन बनाय।
धरम-गुरू इनमें रहें, जग सग कहाँ समाय।।

गूँगा तौ बोलै नहीं, बहरा सुनै न कान।
अन्धे कूँ दीखै नहीं, ईस बीस ले मान।।

मंदिर मस्जिद आपके, हैं कैसे भगवान।
हिन्दू-मुस्लिम नित मरैं, अपनी-अपनी जान।।

मस्जिद मुल्ला जात हैं, पण्डा मंदिर जाँय।
लाएँ अल्ला राम कूँ, संग जंग करवाँय।।

कुरान-पुरान कूँ घोरि कैं, पण्डित मुल्ला जाँय।
खुद नैं तौ देख्यौ नहीं, हमकूँ स्वर्ग बताँय।।

लट्ठ बड़ौ है, ना धरम, साँची कह कैं देख।
हिन्दू-मुस्लिम नित मरैं, कह-कह झूठौ लेख।।

साम्प्रदायिकता रोग है, चढता नशा अफीम
पंडित तौ वैद्य बनौ, मुल्लाबनौ हकीम।

ईसुर तौ संसार कौ, ना को की जागीर।
बात करैं क्यों बीच के, पका आपनी खीर।।

धान और कौ खात है, अर्जुन पुन्य न होय।
साधू कूँ मुक्ती मिलै, बाकी रहै न कोय।।

देखे पंडित मौलवी, जग में विष बरताय।
नेता नहीं कलंक है, भेदभाव फैलाँय।।

जो नेता खेता नहीं, को कागा को चील।
वे ही बनते भेड़िया, वे ही बने वकील।।

बुद्धि में ताला लगा, लै गए चाबी संत।
बंद कयामत तक रहो, फल आ कबर बसन्त।।

मजबह प्यार सिखात ना, वह तौ बैर सिखाय।
लड़ैं शिया वा सुन्नियाँ, ब्राह्मन सूद्र न क्याय।।

ईसुर से पइसा बड़ौ, यासे बाढ़े पाषान।
मंदिर मस्जिद में तुलै, लढ़ि भेंट इनसान।।

मंदिर मदिरा भाँति है, करि दरसन बौराय।
अनहोनी होनी करै, तालवृक्ष चाढ़ि जाय।।

गिरजा गुरुद्वारे घने, मंदिर मस्जिद धाम।
कहते मालिक एक है, फिर क्यों गढ़े मुकाम।।

बिन धन चालैं सब धरम, सच्चे सेवक होंय।
ईस फीस ना लेत है, बोलै मोल न कोय।।

बकरा फकरा जा सकै, करै न कोई चाल।
इसीलिए कुरबान हो, क्यों न सिंह हलाल।।

झूठ ऊँट की भाँति है, टूटे उसका पाँव।
कभी ठीक नहिं होत है, जुड़वा लो सौ ठाँव।।

मदिरा में वह मद नहीं, जो वर्णों में पाय।
पिये बिना मदहोश हैं, हिन्दू हिन्दू छाय।।

झूठो सच्चो जो लिख्यो, घर माये भगवान।
पूछे तो कह दीजिए, तू राकस का जान।।

बिगरी बुद्धि वकील की, डिगरी रहे लजाय।
पत्थर से देवत कहें, मानि जज्ज भी जाय।।

पत्थर से वर माँगते, राष्ट्रपति, प्रधान।
जग मूरत से माँगि ले, झूठो राज-विधान।।

राज मनुज को मारता, धरम भरम फैलाय।
बईमानी विद्या रचे, धन इच्छा फैलाय।।

मन बुद्धी गिरवी रखी, दीनौ भैम अपार।
अर्जुन अब तक ना चुका, मजहब कौम उधार।।

भक्ति-भाव है स्वार्थी, संग न काहू भाय।
स्वर्ग आपकूँ च्हात है, जगत भाड़ में जाय।।

चंदन-सी विरासत भली, दै खुशबू लिपटाय।
विरासत भली न नाग-सी, पियै दूध विष च्हाय।।

परदे पीछैं चाल है, झूठे साँच बनाँय।
चित्रपटों की सूरतें, मेकप सौं छिप जाँय।।

पत्रकार पत्थर भये, हैं सम्पादक शंख।
पत्थर कूँ देवत लिखें, डारें भैम निसंक।

राजा सिंह समान है, चीता मजहब जान।
धन बिल्ली-सा छल करै, विद्या बन्दर ज्ञान।।

पंडित नैं परिवार की, पढ़ी गरीबी नाँय।
पढ़े पुरान व पत्तरा, स्वर्ग-नरक बराँय।।

राजा तेरे राज कौ, हम पै का अहसान।
घर रोटी कपड़ा नहीं, जीवे स्वान समान।।

कविता रस दस लिख गए, लिक्खा श्रम रस नाँय।
या रस के बिन बाबरे, कोइ रस जी नहीं पाय।।

मैंने पुस्तक न पढ़ी, मैंने पढ़ा समाज।
जौ देखा वो दुखी, पुराने काज-रिवाज।।

आबिद आलमी

ग़ज़ल

घरौंदे नज़रे आतिश और जख़्मी जिस्मो जाँ कब तक
बनाओगे इन्हें अख़बार की यूं सुर्खियां कब तक
यूं ही तरसेंगी बाशिंदों को सूनी बस्तियां कब तक
यूं ही देखेंगी उनकी राह गूंगी खिड़कियां कब तक
नहीं समझेगा ये आख़िर। लुटेरो की जबां कब तक
हमारे घर को लुटवाता रहेगा पासबां कब तक
रहेंगे लफ़्ज़ मज़लूमों के आख़िर बेज़ुबां कब तक
रहेंगी बंद गोदामों में उनकी अर्ज़ियां कब तक
रहेगा क़त्लोग़ारत यूं मेरा हिन्दोस्तां कब तक
लुटेंगी अपनों के हाथों ही इसकी दिल्लियां कब तक
कहो सब चीख़ कर हम पर बला का क़हर टूटा है
कि यूं आपस में ये सहमी हुई सरगोशियां कब तक
यूं ही पड़ती रहेगी बर्फ़ ये कब तक पसे मौसम
यूं ही मरती रहेंगी नन्हीं नन्हीं पत्तियां कब तक
कहीं से भी धुंआ उठता है जब, घर याद आता है
यूं ही सुलगेंगी मेरी बेसरो-सामानियां कब तक
गिरा देता है हमको ऊंची मंज़िल पर पहुंचते ही
हम उसके वास्ते आख़िर बनेंगे सीढ़ियां कब तक
हमारे दम से है सब शानो शौकत जिनकी ए आबिद
उन्हीं के सामने फैलाएंगे हम झोलियां कब तक

आबिद आलमी

ग़ज़ल

घरौंदे नज़रे आतिश और जख़्मी जिस्मो जाँ कब तक
बनाओगे इन्हें अख़बार की यूं सुर्ख़ियां कब तक
यूं ही तरसेंगी बासिंदों को सूनी बस्तियां कब तक
यूं ही देखेंगी उनकी राह गूंगी खिड़कियां कब तक
नहीं समझेगा ये आख़िर। लुटेरों की ज़बां कब तक
हमारे घर को लुटवाता रहेगा पासबां कब तक
रहेंगे लफ़्ज़ मज़लूमों के आख़िर बेज़ुबां कब तक
रहेंगी बंद गोदामों में उनकी अर्ज़ियां कब तक
रहेगा क़त्लोग़ारत यूं मेरा हिन्दोस्तां कब तक
लुटेंगी अपनों के हाथों ही इसकी दिल्लियां कब तक
कहो सब चीख़ कर हम पर बला का क़हर टूटा है
कि यूं आपस में ये सहमी हुई सरगोशियां कब तक
यूं ही पड़ती रहेगी बर्फ़ ये कब तक पसे मौसम
यूं ही मरती रहेंगी नन्हीं नन्हीं पत्तियां कब तक
कहीं से भी धुंआ उठता है जब, घर याद आता है
यूं ही सुलगेंगी मेरी बेसरो–सामानियां कब तक
गिरा देता है हमको ऊंची मंज़िल पर पहुंचते ही
हम उसके वास्ते आख़िर बनेंगी सीढ़ियां कब तक
हमारे दम से है सब शानो शौकत जिनकी ए आबिद
उन्हीं के सामने फैलाएंगे हम झोलियां कब तक

इंदु जैन

कोशिश

एक चीख़ लिखनी थी
एक बच्चे की चीख़
अरबी में, तुर्की में
यिद्दिश में, पैकिस्तानी में
असमिया, हिन्दी, गुरमुखी में

चिथड़े उड़े बाप और
ऐंठी पड़ी मां
के बीच उठी
बच्चे की चीख़–सिर्फ़ एक चीख़

आज अकेले में कोशिश करना
लिखना
बच्चे की चीख़–बस एक
अपनी अपनी मादरी ज़बान में

कल हम कहीं न कहीं इकट्ठा होंगे
झुलसे हुए हाथ मिलाने

इन्द्र स्वरूप दत्त नादां

इसतफ़सार

ए दश्ते ग़म के साकिनो
क्या तुमने सोचा है कभी
वो हाथ किसका हाथ है
जिसके इशारे पर यहां
चलती हैं ग़म की आंधियां

ए दश्ते ग़म के साकिनो
क्या तुमने सोचा है कभी
किस चारागर के फ़ैज़ से
आबाद हैं इस दश्त में
बेचारगी की बस्तियां

ए दश्ते ग़म के साकिनो
क्या तुमने सोचा है कभी
किस डाल का पंछी है ये
जिसके परे परवाज़ ने
बख़्शी हैं तुमको दूरियां

ए दश्ते ग़म के साकिनो
क्या तुमने सोचा है कभी
इस ज़ख़्मज़ार वक़्त से
रूठी हुई है किसलिए
रंगीं, नज़र कश तितलियां

ए दश्ते ग़म के साकिनो
कुछ तो कहो, कुछ तो कहो
उस शहर का भी ज़िक्र हो
जिसके धुएं की ओट से, चमकी है ग़म पर बिजलियां

ख़ार पुश्त

इस अम्नकेश, मुहब्बत परस्त बस्ती में
ये सुर्ख़ शोले, ये ख़ंजर कहां से आए हैं
ये ख़ार पुश्त ये अजगर कहां से आए हैं
जनम जनम की शराफ़त परस्त बस्ती में

है किसके हाथ का जादू, ये जश्ने ख़ूरेज़ी
ये आग किसकी मुहब्बत का शाख़साना है
ये ज़हर किसकी शराफ़त का शाख़साना है
है किसकी ज़ात का ज़ेवर निशाने चंगेज़ी

लहू के दीप जलाता है कौन शाम ढले
और अपने घर में सितारों को दफ़्न करता है
हयात बख़्श बहारों को दफ़्न करता है
ख़िराज लेता है ज़ख़्मों से कौन रात गये

जवाब मांगते हैं लोग इन सवालों का
है कौन मुद्दई इन क़त्ल होने वालों का

उन्वान चिश्ती

फ़साद ज़दा गज़लें

वो ज़हर को अमृत कहते हैं जो चाहने वाले हैं बाबा
घूमें नशे में हर गुल को गो होठों प छाले हैं बाबा,
इन्सां के सरों के नज़राने, चढ़ते हैं यहां सजदों की जगह,
ये किसके मुआबिद हैं सौंई! ये किसके शिवाले हैं बाबा
तूफ़ान तो आया और गया, लेकिन है अजब घर की हालत
बिखरे हुए कच्चे कमरे में, बोसीदा रिसाले हैं बाबा
वो देख वो बच्चे रोते हैं, वो देख वो लाशें रखी हैं,
मजबूरे तवाज़ो हूं वरना, ये कड़वे निवाले हैं बाबा,
क़िस्मत से अगर बच निकले हम, फिर आन मिलेंगे अपनों से,
ये घर ये किताबें, ये बच्चे, सब तेरे हवाले हैं बाबा,
इतना तो कभी इससे पहले, मग़रूर तुझे देखा ही नही
"इन्सान नुमा" कुछ साँपों के, क्या डंक निकाले हैं बाबा

चमन में एक पत्ता भी हरा नईं
नया है ये पुराना माजरा नईं
सियासत खुश्क फाहे रख रही है
लगा था ज़ख्म जो दिल पर, भरा नईं
तू सोना है, परख अपनी करा ले
कसौटी हूं, मेरा खोटा खरा नईं
यूरिश चारों तरफ़ से हो रही है,
ताज्जुब है, अभी इन्सां मरा नईं
चमन के फूल सारे चुन लिए हैं
मगर, दामन अभी उसका भरा नईं
क़िनाअत की उसे तब्लीग़ मत कर
जिसे नाने जवीं का आसरा नईं

आग के तीरों की बारिश से सारी फ़िज़ा सिंदूरी है,
सूफ़ी जी तलवार उठाओ, जंग भी इक मजबूरी है
वो भी है मुख़्तारी मेरी, ये भी मेरी मज़बूरी है

ऋचा तिवारी

एहसास

उन्होंने धावा बोला
और
मुस्लिम बस्ती जला दी
मुझे दुख नहीं था
मैं मुसलमान नहीं थी।

उन्होंने
धावा बोला और
हरिजन बस्ती उजाड़ दी
मैंने ख़बर पढ़ी और रख दी
मुझे क्या करना था
मैं हरिजन नहीं थी।

उन्होंने
धावा बोला और
सिक्खों के घर फूंक डाले
इस पर भी मुझे
ख़ामोश ही रहना था
मैं सिक्ख नहीं थी।

उन्होंने
फिर धावा बोला और
अब तक जो
ग़नीमत मानती रही मैं
अब तक जो
मैंने बरती ख़ामोशी
वह सब व्यर्थ गयी
मैं सन्न थी
यह मेरा घर था

ओमप्रकाश वाल्मीकि

लाशों के बाद भी

जलती बस्तियों में
लाशों के ढेर पर
वे दे रहे हैं वक्तव्य
आस्था पर।

तर्कहीन कुकृत्य
उन्हें विचलित नहीं करते
नहीं जगातीं स्वप्नों में
दर्दनाक चीखें।

इतने रक्त पात
इतनी आगज़नी के बाद भी
उनकी बारीक मुस्कुराहटें
संत-बैरागी–सा चोला
उन्हें जरायम पेशा घोषित नहीं करता
स्वच्छ श्वेत परिधानों पर
गुनाहों का लाल धब्बा
दिखायी नहीं पड़ता।

कुछ आंखें देख रही हैं
ख़ामोशी के साथ
अंधेरे की गहरी पर्तों में
ख़तरनाक साज़िश
जो कड़ुवे धुएं का चक्रव्यूह बनाकर
फंसा रही है असंख्य अभिमन्यु

फुटबाल की तरह
लुढ़क रहे हैं
रोजी-रोटी के लिए खटते लोग



'कफ़ील' अमरोहवी

साल-ए-नौ के मौके पर

मेरे हमदम! मेरे दोस्त!!
साल-ए-नौ के मौके पर
आख़िर तुझ को
कौन सा तोहफ़ा पेश करूँ
संग हवाएँ, लहू रुत्तें, धुआं फ़जाएँ
आग की लपटें, खंजर चीखें, बदबू लाशें
गिद्धों का झुरमुट, भौंकते कुत्ते
सूनी गलियाँ, वीराँ रस्ते
लश्कर-ए-क़ातिल और निहत्थे
क़दम-क़दम ख़ूँख़ार दरिन्दे
बे बाल-ओ-पर भूखे परिन्दे
कटी ज़बानें, जली दुकानें
शंख तबर और क़हर अज़ानें
गंगा जल भी तेज़ाबी
आब-ए-ज़मज़म ज़हराबी
सुब्ह जराहत, दर्द की रात

मेरे हमदम मेरे दोस्त
साल-ए-नौ के मौके पर
आख़िर तुझको
कौन सा तोहफ़ा पेश करूँ

कांतिमोहन

ग़ज़ल

जो हादिसा गुज़रा है वो अफ़साना लगे है
जो होश में है बस वही दीवाना लगे है

अपना है वो इस दर्जा कि बेगाना लगे है
जैसे कभी गुलज़ार भी वीराना लगे है

पुरखों ने सिखाई ही नहीं तर्ज़े-अदावत
करते हैं मगर प्यार तो जुर्माना लगे है

सब जाम लिए बैठे हैं प्यासों के अलावा
दुनिया किसी शैतान का मयख़ाना लगे है

किस राम की होती है फ़ीराई यहाँ 'सोज़'
इस बार तो बदला हुआ पैमाना लगे है

गीत

ऐ होश के दुश्मन होश में आ
ऐ होश के दुश्मन होश में आ

तूने जो गरेबां पकड़ा है दुश्मन का नहीं वो यार का है
तूने जिस पर चाकू खोला मुस्ताहक़ वो तेरे प्यार का है
ऐ होश के दुश्मन होश में आ।

वो हिंदू है कि मुसलमां है वो सिख है या ईसाई है
इस बात का मतलब कुछ भी नहीं पहचान वो तेरा भाई है
ऐ होश के दुश्मन होश में आ।

पहचान उसे जो दुश्मन है जो हम सबको लड़वाता है
अपना घर भरने की ख़ातिर बस्ती वीरान कराता है
ऐ होश के दुश्मन होश में आ।

आ मिल के चलें, आ मिल के लड़ें, ज़ालिम को परीशां हाल करें
अपने फ़ौलादी एके से आ दुश्मन को पामाल करें

ऐ ख़ाकनशीं उठ जोश में आ
ऐ होश के दुश्मन होश में आ।

अमन की बात करो

राहे हक़ पर जो चलोगे तो रहोगे ज़िंदा
ज़ुल्म को ज़ुल्म कहोगे तो रहोगे ज़िंदा
तुम मुहब्बत पे मरोगे तो रहोगे ज़िंदा
और अदावत से बचोगे तो रहोगे ज़िंदा
मिसले गुल तुम भी हंसोगे तो रहोगे ज़िंदा।
अमन की बात करोगे तो रहोगे ज़िंदा॥

सारे आलम को ये पैग़ाम सुनाने उठो।
जंग की आग ज़माने से बुझाने उठो।
शोलए बुग्ज़ो अदावत को दबाने उठो।
आओ अब जौहरी हथियार मिटाने उठो।
इस इरादे से उठोगे तो रहोगे ज़िंदा।
अमन की बात करोगे तो रहोगे ज़िंदा।

तुमको मंज़ूर है इन्सां की तबाही बोलो?
और दुनियां के गुलिस्तां की तबाही बोलो?
लालओ सुंबलो रेहां की तबाही बोलो?
तुम जो शैतॉं से लड़ोगे तो रहोगे ज़िंदा।
अमन की बात करोगे तो रहोगे ज़िंदा।

रूस अमरीका व बर्तानिया हो या जापान
अमन की बात जो करता है वही है इन्सान
वरना दुनिया में कहे जाओगे तुम सब शैतान
जंग बाज़ो ये सुनो वक़्त का प्यारा एलान।
जंग से तुम जो बचोगे तो रहोगे ज़िंदा।
अमन की बात करोगे तो रहोगे ज़िंदा॥

ज़हन मक्कार है और दिल भी तुम्हारा गंदा
तुम जो बारूद का करते हो अभी तक धंधा
मौत का सौदा समझते हो जहां में मंदा
कल तुम्हारे भी गले का यह बनेगा फंदा
कत्ले आलम से बचोगे तो रहोगे ज़िंदा
अमन की बात करोगे तो रहोगे ज़िंदा

आदमी

यह अधेड़
इमामुद्दीन है आदमी
जो ट्यूबों पर पंचर जोड़ते जोड़ते
आज खुद एक पंचर बन गया है
क्या इसे जोड़ सकेगा
इतिहास का कोई पन्ना

क्या तुम कभी
मियां इमामुद्दीन के घर गये हो
जहां उसकी पोती
मुट्ठी में बूंदी का लड्डू दबाये
तुम्हारा इन्तज़ार कर रही है
आज भी

क्या तुमने
किस्तों में मरते हुए
इमामुद्दीन को देखा है
या देखा है
उस चिराग़ को जिसे
मस्जिद में आख़िरी नमाज़ पढ़ने के जुर्म में
बुझा दिया गया?

क्या तुम्हारे ख़ून में कोई हलचल नहीं होती
तुम्हें इमामुद्दीन के घर में टँगा राम
अल्लाह नज़र क्यों आता है?
और
हर बंद संदूक़ में असलाह?
ढ़हती हुई दीवार के
हर छेद का व्यास

दोनाली बन्दूक के व्यास से क्यों तोलते हो?
तुम्हारे कान क्यों नहीं सुन पाते
इमामुद्दीन के हृदय की धड़कन?
निगाहें क्यों नहीं देख पातीं
इमामुद्दीनकी हड्डियों में
बसा देशप्रेम?
क्या तुम पहचान सकोगे उसे
उसकी दाढ़ी के बाल छूकर?

क्या तुम बता सकोगे मुझे
खून को पानी और
पानी को खून बना देने का अर्थ?

कत्ल करने के बाद
उसके खून को सूँघा है तुमने

तुम मौन क्यों हो आदमी
क्या किसी
साज़िश का ताना बुना जा रहा है?

सड़क पर छितरी लाश के
चिथड़ों से रिसती
खून की हर बूँद
तुमसे पूछती है
उसे किसी के
हिन्दू या
मुसलमान होने से क्या मतलब

कुलदीप सलिल

ग़ज़ल

इस कदर कोई बड़ा हो, मुझे मंजूर नहीं,
कोई बंदों में खुदा हो, मुझे मंजूर नहीं।

रोशनी छीन के घर-घर से चरागों की अगर,
चांद बस्ती में उगा हो, मुझे मंजूर नहीं।

मुस्कुराते हुए कलियों को मसलते जाना,
आपकी एक अदा हो, मुझे मंजूर नहीं।

सीख लें दोस्त भी कुछ तो तजुर्बे से कभी,
काम ये सिर्फ मेरा हो, मुझे मंजूर नहीं।

खूब तू, खूब तेरा शहर है, ता-उम्र मगर,
एक ही आबो-हवा हो, मुझे मंजूर नहीं।

हूं मैं कुछ आज अगर तो हूं बदौलत उसकी,
मेरे दुश्मन का बुरा हो, मुझे मंजूर नहीं।

हो चरागां तेरे घर में, मुझे मंजूर 'सलिल',
गुल कहीं और दिया हो, मुझे मंजूर नहीं।

ग़ज़ल

मेहरबां कोई-न-कोई आप-सा मिलता रहा,
काम बस ऐसे ही अपना, दोस्तो चलता रहा।

अब ठिकाना ही बदल लें आप तो मैं क्या करूं,
चिट्ठियों पर मैं पता तो ठीक ही लिखता रहा।

जश्न में था शहर सारा, जगमगाहट जीत की,
जंग से लौटा सिपाही, देखता, हंसता रहा।

खेतियां जलती रहीं, झुलसा किये इन्सां मगर,
एक दरिया बेख़बर जाने किधर बहता रहा।

रोंगटे उठते हैं अब भी याद कर वो दास्तां,
ये ज़मीं सुनती रही जो आसमां कहता रहा।

मन के वो मेरे मुसाफिर पहुंचे होंगे अब कहां!
सोचता हूं सोचकर मैं क्या यहां बैठा रहा?

जोगियों की ज़िंदगी थी, क्या थी अपनी ज़िंदगी,
ज़िंदगी जीते रहे और मन सदा करता रहा।

हर मुसीबत से बड़ा है उस मुसीबत का ख़्याल,
आ पड़ी तो जाना इतना यूं ही मैं डरता रहा।

हम भी हैं बाज़ार में हमको भी सब मालूम है,
क्या ख़रीदा जा रहा है और क्या बिकता रहा।

ग़ज़ल

जलते घर से निकल के आये हैं
अपनी मुट्ठी में राख लाये हैं

रह गये हम वहीं जहां के थे
यहां आये हमारे साये हैं

कुछ ख़बर है, मेरे वतन की हवा
तूने कितने चराग़ जलाये हैं

माफ़ तुमको करेगा राम न रब
तुमने बच्चे बहुत रुलाये हैं

था कोई जिसने आप मरके हमें
ज़िंदा रहने के ढब सिखाये हैं

आज भी हैं नये-नये से वो
सदियों पहले जो गीत गाये हैं

तेज़ी-तेज़ी में कितनी ख़ुशियों को
लोग रस्ते में छोड़ आये हैं

ज़ख़्म खा-खा के भी सलिल हम लोग
आस, इनसान से लगाये हैं

ग़ज़ल

आग आंखों में लिये मैं कहां जाकर निकला
मैंने जो फूंक दिया वो मेरा ही घर निकला।

लोग कहने लगे पागल, पड़े पत्थर, मुझको
मैं न अय्यारी में जब उनके बराबर निकला।

सूखी झीलों का रहा है जहां मंज़र बरसों
आज बरसीं तो उन आंखों में समुन्दर निकला।

था फ़रार आज तलक कत्ल कई जो करके
आज देखा तो वो कातिल मेरे अंदर निकला।

हम रहे चूमते जिन हाथों को यारब बरसों
एक नारे में उन्हीं हाथों में ख़ंजर निकला।

क्यों मुझे ही लिये जाते हो पकड़कर, लोगों
चोरी का माल तो इस शहर में घर-घर निकला।

तुम समझ पाओ अगर तो मुझे भी समझाना
राम की सेना या रावण का या लश्कर निकला।

कोई बचना नहीं शीशों के नगर में अब तो
इक हजूम आज लिये हाथों में पत्थर निकला।

घूम-फिर आया हूं कितने ही शिवाले मैं सलिल
मेरे सर के लिये निकला तो तेरा दर निकला।

दूसरा बनवास

राम बनवास से जब लौटके घर में आये
याद जंगल बहुत आया जो नगर में आये
रक़्से-दीवानगी आंगन में जो देखा होगा
छह दिसंबर को श्रीराम ने सोचा होगा
इतने दीवाने कहां से मेरे घर में आये

जगमगाते थे जहां राम के क़दमों के निशां
प्यार की कहकशां लेती थी अंगड़ाई जहां
मोड़ नफ़रत के उसी राहगुज़र से आये

धर्म क्या उनका है क्या ज़ात है यह जानता कौन
घर न जलता तो उन्हें रात में पहचानता कौन
घर जलाने को मेरा लोग जो घर में आये

शाकाहारी है मेरे दोस्त तुम्हारा ख़ंजर
तुमने बाबर की तरफ़ फेंके थे सारे पत्थर
है मेरे सर की ख़ता ज़ख़्म जो सर में आये

पांव सरयू में अभी राम ने धोये भी न थे
कि नज़र आये वहां ख़ून के गहरे धब्बे
पांव धोये बिना सरयू के किनारे से उठे
राजधानी की फ़िज़ा आयी नहीं रास मुझे
छह दिसंबर को मिला दूसरा बनवास मुझे।

कृष्ण मोहन

क़िता

दो कोमों का रंगे दिलजू
जिसने मिटाया फ़र्क़े मनो तू
मेरे दिलोजां पर छाया है
प्यार की ख़ुशबू से हूं ख़ुशख़ू
कृष्ण मोहन गोया हूं मैं
आधा मुस्लिम आधा हिन्दू

क़िता

सन्देश हूं मैं दो कोमों का
या दो बाग़ों की ख़ुशबू हूं
हूं एक अधूरा मुस्लिम मैं
और एक अधूरा हिन्दू हूं

ग़ज़ल

दिल सरासीमा हुआ ख़ून की अरज़ानी पर
जानवर सोच में हैं वहशते इन्सानी पर
इस क़दर वहशत ओ दहशत की है इफ़रात यहां
दश्त को रश्क हुआ शहर की वीरानी पर
वजहे आशोबेज़मन एहले सियासत का चलन
क्यूं न अफ़सोस हो दानाओं की नादानी पर
कुछ दबाओ तो पड़ा अहले नज़र के दम से
रंग और नस्ल की ज़ंजीर व ज़िंदानी पर
एक आवारा सा एहसास हमारे दिल में
एक आवारा सी लट आपकी पेशानी पर
कैद रख कैद की मीयाद तक उसको लेकिन
कैद में जब्र न कर इश्क के ज़िंदानी पर
मैं हूं वो नक़्श जो मिट जाता है बनते-बनते
कृष्ण मोहन है मेरा नाम लिखा पानी पर

ख़िज़्र बर्नी

सियासत

शेख़ो पण्डित का न कुछ मस्जिदो मन्दिर का सवाल
ये है एक वक़्त के अन्दाज़ का अपना अहवाल
दिल में दोहराता हूं इन्सान का बस माज़ी-ओ हाल
किस क़दर हो गए ईमान ज़माने के निढाल

1.
इत्तेफ़ाक़न कोई हक़ बात भी कह देता है
वरना हर दिल में सियासत के सिवा कुछ भी नहीं

दिल में कुछ और ज़बां पर है नुमायां कुछ और
असल रूदाद का देखा गया उन्वां कुछ और
कोई इस जहद से लेता है पशेमां कुछ और
और करता है कोई ऐश फ़रावां कुछ और

2.
हमने देखी है ज़माने के चलन की तासीर
नाज़े गुफ़्तार व हलावत के सिवा कुछ भी नहीं

ज़िंदाबाद

ज़िंदा क़ौमों के चलन होते हैं हिम्मत, इत्तहाद
देखने वाली नज़र कहती है उनको ज़िंदाबाद
बुग्ज़ो नफ़रत से तरक़्क़ी कुछ नहीं होती फ़िराक़
पा नहीं सकती ग़ुलामाना रविश बस एतमाद

जम्हूरियत

तंग नज़री बुग्ज़ो नफ़रत, बाहमी रंजो नफ़ाक़
ऐसी बातों की नफ़ी करती है ये जम्हूरियत
एहले गुलशन का नहीं कुछ मुख़्तलिफ़ रंगो नस्ल
एक कुन्बे में कहीं देखी है ऐसी ग़ैरियत

गणेश पाण्डेय

ओ ईश्वर

ओ ईश्वर! तुम कहीं हो
और कुछ करते-धरते हो
तो मुझे
फिर मनुष्य मत बनाना

मेरे बिना रुकता हो
दुनिया का सहज प्रवाह
ख़तरे में हो तुम्हारी नौकरी
चाहे गिरती हो सरकार

तो मुझे हिन्दू मत बनाना
मुसलमान मत बनाना

तुम्हारी गर्दन पर हो
किसी की तलवार
किसी का त्रिशूल

तो बना लेना मुझे
हिन्दू
चाहे मुसलमान

देना हृष्ट-पुष्ट शरीर
त्रिपुंडधारी भव्य ललाट
दमकता हुआ चेहरा
और घुटनों को चूमती हुई
नूरानी दाढ़ी

बस
एक कृपा करना

ओ ईश्वर!

मेरे सिर में
भूसा भर देना, लीद भर देना
मस्जिद भर देना, मंदिर भर देना
गंडे-तावीज भर देना, कुछ भी भर देना
दिमाग मत भरना

मुझे कबीर मत बनाना
मुझे नजीर मत बनाना
मत बनाना मुझे

आधा हिन्दू
आधा मुसलमान।

ग़फ़ूर तायर

क्यों

क्यों तुलसी पहले सबकी माता थी?
क्यों गऊ-माता सबकी अपनी माता थी?
क्यों चच्चा मियाँ सबके प्यारे चच्चा थे?
क्यों ददद्रा जी की आड़ सभी करते थे?
क्यों मुल्ला जी की डाँट से सब डरते थे?

क्यों सलमा की शादी
गाँव की बेटी की शादी होती थी?
क्यों पार्वती की डोली उठने पर
हर आँख ज़ार ज़ार रोती थी?
क्यो बाल न बाँका
गुंडा किसी का कर पाता था?
बुरी नियत से जो भी आता,
गाँव से पिटकर जाता था?

क्यों दीवाली के आने पर
घर-आँगन की लीपा-पोती करती थी चाची?
क्यो पाँच दीप आँगन में थी जलाती?
क्यों रमुआ, दमुआ, भगल पांडे
देहरी पर दीप रख जाते थे?
जिन्हें अज़ान होने तक—
रमज़ान चचा, क्यों हर हालत में जलाते थे?

क्यो बनता था इशाक देवी का शेर?
नौ दिन क्यो रखता था उपवास मुहम्मद शमशेर?
क्यो गिरवर दद्दा का ताजिया
सबसे आगे रहता था?
क्यों जमना रो रोकर
मर्सिया इमाम हुसैन का पढ़ता था?

क्यों मस्जिद के आगे
हर दूल्हे की शहनाई रुका करती थी?
क्यों देवी जी की मढ़िया पर
फूली डलिया फूलों की
शक्कूर मियाँ की चढ़ा करती थी?

अब भावनाओं की
क्यों नदियाँ सूखी हैं?
फ़िरकापरस्ती के पर्वत क्यों ऊँचे हैं?
अब दद्दा जी की वृद्धा आँखों के नीचे
क्यों अलगाव के झंडे गाड़े जाते हैं?
इमामबाड़ों और अखाड़ों में क्यों
अब वैमनस्य के बजते नगाड़े हैं?
उस क्यों का कोई जवाब दो
इस क्यों का कोई तो हिसाब दो।

दंगा

आओ भाई बेचू आओ
आओ भाई अशरफ आओ
मिल-जुल करके छुरा चलाओ

मालिक रोज़गार देता है
पेट काट-काट कर छुरा मगाओ
फिर मालिक की दुआ मनाओ
अपना-अपना धरम बचाओ
मिल-जुल करके छुरा चलाओ
आपस में कट कर मर जाओ
आओ भाई तुम भी आओ
तुम भी आओ तुम भी आओ
छुरा चलाओ धरम बचाओ
आओ भाई आओ आओ।

छुरा भोंक कर चिल्लाये–
'हर हर शंकर'
छुरा भोंक कर चिल्लाये–
'अल्लाहो अकबर'
शोर खत्म होने पर
जो कुछ बचा रहा
वह था छुरा
और
बहता लोहू. . .

इसबार दंगा बहुत बड़ा था
खूब हुई थी
खून की बारिश
अगले साल अच्छी होगी
फसल
मतदान की

हे राम !

झरनों में पानी नहीं, कुए रहे हैं सूखे,
हिरन दौड़ते प्यास में, वन वन फिरती भूख।
सूनी सूनी बस्तियां, नहीं चर रहे ढोर,
कौवे कुत्ते अन्न बिन, नहीं मचाते शोर।
घास फूस की कुटी में, बसे देवता ग्राम,
अरबों का मंदिर बने, करें राम आराम।
राम तपे वनवास में, लंका गए जलाय,
राम कृपा से शहर की, झुग्गी जलती जाये।
दबे छिपे जो बच रहे, नहीं पुकारें राम,
धन्धा करते राम का, अनुचर राम गुलाम।
राम लला मंदिर बसें, माल पुआ का भोग,
मस्जिद से खुश्बू उड़ी, सनक रहे वे लोग।
भला जगत का जो करें, पुण्य परक यह कर्म,
मजहब मस्जिद में बसें, मन्दिर बसे न धर्म।
रक्षा करें बजार की, रक्षक राम उदार,
शंकित इस व्यापार से, उनको मार कटार।
कुछ कुबेर इस देश में, कर मंदिर निर्माण,
भूखों को रोटी नहीं, देते पद निर्वाण।
काव्य ग्रन्थ कुछ छापकर, बेच रहे वे धर्म,
गेरूआ उनकी जिल्द है, यह व्यापारिक मर्म।
गोली से गाँधी गिरे, "राम राम हे राम",
सोचो गाँधी क्यों गए, मुँह से कहते राम।

साकेतवासी राम

सत्ता तुमसे बन्दगी, ले कबीर का नाम,
मुक्ति उन्हें अब दो प्रभो, जो रह गए गुलाम।
न्याय धरम क्या चीज है? धन के साथी सन्त,
धन-दौलत खातिर लड़ें, चर्चित पूज्य महन्त।
कल तक वे कहते रहे, "राजा ईश्वर अंश"
अब धन पति ईश्वर हुए, बड़ा रघुपति वंश।
किसका करते कीर्तन, कौन दे रहा भोग
हमने पूछा सत से क्यों ससारी रोग।
सेवक राजा राम के, लंका डाले भून
सैनिक राजा राम के, रंगे हाथ है खून।
नष्ट किये तुम निजपुरी, फिर बूडे मझधार,
तेरा लेकर नाम वे, डुबा रहे बिनधार।
चित्रकूट में तुम रहे, बसे विन्ध्य वनबीच,
कैसे वनवासी रहे याद तुम्हारी सींच।
आओ बिचरो फिर यहां, फिर से देखो राम,
विन्ध्याचल के गाव सब, तुम्हे बुलाते राम।
तुम फिर राजा राम थे, राजमहल में वास,
भाट विदूषक चाहिये, और चाहिये दास।
जिनके घर लक्ष्मी बसै, ऐसे तेरे दास,
तुम सचमुच भगवान थे, बाकी फिरे उदास।
मारुति सुत के हृदय में, हरदम बसते राम
गद्दा देख जपते रहे, रघुपति राजा राम।
राम-भक्ति से हो भला, जुडते लाख करोड,
सट्टे बाजी हो रही, गर्दन रहे मरोड।
अंतिम गिनती अरब की, पहली गिनती राम,
राम नाम जल थल गगन, करते नींद हराम।
अमीचन्द हैं बाँटते, राम रसायन रोज,
दनो हाथों लूटते, उपमा मिली न, खोज।

गौहर रज़ा

फूटेगी किरण

ये साल भी यारों ख़त्म हुआ,
कुछ ख़ून बहा कुछ घर उजड़े,
कुछ कटरे जल कर ख़ाक हुए,
इक मस्जिद की ईंटों के तले,
हर मसला दब कर दफ़न हुआ।
जो ख़ाक उड़ी वो ज़हनों पर
यूँ छाई जैसे कुछ भी नहीं।
अब कुछ भी नहीं है करने को
घर बैठो डर कर अब के बरस,
या जान गवाँ दो सड़कों पर
घर बैठ के भी क्या हासिल है।

न मीर रहा न ग़ालिब है
न प्रेम के ज़िंदा अफ़साने,
बेदी भी नहीं मंटो भी नहीं
जो आज की वहशत लिख डालें
चिश्ती भी नहीं नानक भी नहीं
जो प्यार की वर्षा हो जाए,
मंसूर कहा जो ज़हर पिए
गलियों में बहती नफ़रत का,
वो भी तो नहीं जो
तकली से फिर प्यार के
ताने बुने डाले।

क्यूं दोष धरो हो पुरखों पर
ख़ुद मीर हो तुम, ग़ालिब भी तुम्हीं,
तुम प्रेम का जिन्दा अफ़साना,
बेदी भी तुम्हीं, मंटो भी तुम्हीं
तुम आज की वहशत लिख डालो

चिश्ती की सदा, नानक की नवा
मंसूर तुम्ही, तुम बुल्ले शाह,
कह दो कि अनल हक़ ज़िन्दा है
कह दो अब अनहद गरजेगा
इस नुक्ते पर गल मुकदी है
इस नुक्ते से फूटेगी किरण
और बात यहीं से निकलेगी।

घनश्याम अग्रवाल

"दंगों के खिलाफ, कुछ क्षणिकाएं"

आदमी की मति
मारी गई और
दंगा हो गया,
हमाम में तो वह था ही
अब सड़क पर भी
नंगा हो गया।

जब तलक हवाओं में
जली-अधजली लाशों की
गंध घुली है,
कौन कह सकता है
किसकी कमीज किससे
ज्यादा धुली है?

दो दिन का भी
अनाज तक नहीं
जिनके यहां है,
उन्हें तो पता ही नहीं
कि बाबर कौन था
अयोध्या कहां है?

नफ़रत का पेट बड़ा
और आदमी का खून
कम है
इसका पेट भर सके
किस दंगे में
इतना दम है?

था मेरी दुकान का
या कि धुंआ
तेरे मकान का,
मुंह तो काला
हो ही गया है
आसमान का।

चन्द्रसेन 'कमर'

ग़ज़ल

ये मन्दिर ये मस्जिद वाले
सभी साँप हैं काले काले।
ख़ुद की कुर्सी रहे सलामत
देश कर दिया हवा-हवाले।
मिलें हाथ में ले गुलदस्ते
आस्तीन में छुरियाँ-भाले।
आग लगा दी ख़ुदा के घर में
ये क्या सूझी बैठे-ठाले।
दीवाना सज्जन से बोला–
बहती है गंगा तू भी नहा ले।
धो लिए हाथ, नहा ले गंगा
ख़ून के धब्बे पड़े मिटा ले।
इज्जत का अब लौटना मुश्किल
चाहे जितना जोर लगा ले।
कहें तो किससे कहें 'कमर' कुछ
ज़ुबाँ पे जड़ दिये वक्त ने ताले।

ज़हीर कुरेशी

ग़ज़ल

वे शायरों की कलम बेज़ुबान कर देंगे,
जो मुँह से बोलेगा, उसका 'निदान' कर देंगे।
वे आस्था के सवालों को यूँ उठायेंगे,
ख़ुदा के नाम, तुम्हारा मकान कर देंगे,
तुम्हारी 'चुप' को समर्थन का नाम दे देंगे
बयान अपना, तुम्हारा बयान कर देंगे।
तुम उन पे रोक लगाओगे किस तरीके से,
वे अपने 'बाज़' की 'बुलबुल' में जान कर देंगे।
कई मुखौटों में मिलते हैं उनके शुभचिंतक,
तुम्हारे दोस्त, उन्हें सावधान कर देंगे।
वे शेख़-चिल्ली की शैली में, एक ही पल में,
निरस्त अच्छा-भला संविधान कर देंगे।
तुम्हें पिलायेंगे कुछ इस तरह धरम-घुट्टी,
वे चार दिन में तुम्हें 'बुद्धिमान' कर देंगे।

तरब ज़ियाई अमरोहवी

ग़ज़ल

किसने डाली है बिनाए इख़्तिलाफ़
ज़ीस्त को किसने सिखाये इख़्तिलाफ़

हो गई दुनिया सराये इख़्तिलाफ़
रहम फ़रमा ऐ ख़ुदाये इख़्तिलाफ़

भूल कर अपने-पराए इख़्तिलाफ़
खोलिये बन्दे क़बाऐ इख़्तिलाफ़

सिसकियाँ लेती रहेगी तावके
ज़िन्दगी ज़ेरे समाए इख़्तिलाफ़

मुत्तफ़िक़ रहने के मौसम क्या हुए
चल रही है क्यों हवाये इख़्तिलाफ़

ज़िन्दगी भर फ़िक्र ये लाहक़ रही
ज़िन्दगी से हो न जाये इख़्तिलाफ़

सोच तो क्या ज़ेब देता है तुझे
इख़्तिलाफ़ और फिर बराए इख़्तिलाफ़

गुफ़्तगू भाई की भाई से नहीं
अल्लाह-अल्लाह इन्तिहाये इख़्तिलाफ़

दिलबरों की दिलबरी का ज़िक्र क्या?
क़ातिले जाँ है अदाये इख़्तिलाफ़

दुलेसिंह सिकरवार

मानव धर्म

मानव धर्म सभी प्यारा मिलकर सब दीदार करो
ग्रन्थ कुरान पुरान एक है मत मज़हब की रार करो

'ह' से हिन्दु 'म' से मुसलिम दोनो का 'हम' से नाता
जिसको भारत में कहते है दामन चौली का साथ।
कुन्द विचारों से ग़फ़लत की मत गहरी दीवार करो
मत मजहब की रार करो

मस्जिद में अज़ान की शोहरत, मन्दिर गूँज आरती की
जीवन दर्शन ने समझी है दोनों आख भारती की
कटुता की पैनी कुधार से, मत दिल को बेजार करो
मत मजहब की रार करो

सत फकीर सदा युग युग में, निधि रहे हैं भारत की
हिन्दु मुसलिम को लताड दे, राहे दी निर स्वारथ की
सदभावो की नव धारा का, पग पग पर सचार करो
मत मजहब की रार करो

देव शंकर नवीन

आन वतन की

आग लगी तुम सावधान हो
मुल्क का जलवा देखे जाओ,
लोग मरें घर जले किसी का
अपनी रोटी सेंके जाओ।

कुत्ते यूं ही भौंक-भौंक कर
थक कर चुप हो जाएंगे
बीच-बीच में चुप करना हो
तिनका-टुकड़ी फेंके जाओ।

मुल्को-वतन की आन लुटे तो
हो-हल्ला नाकाफी है
इसी लूट में तुम भी भैया
अपनी कुर्सी छेंके जाओ।

तन से-धन से-दिल से जो भी
कुर्बानी दे देता है
उस मूरख के नाम हंसो
और थूक बहुत भी फेंके जाओ।

नन्दलाल पाठक

ग़ज़ल

यहाँ तो आदमी से आदमी है अब डरा हुआ
डरा हुआ हर आदमी, है आदमी मरा हुआ।

मैं आ रहा हूँ देखता नरक को अपनी आँख से
जो कल्पना में था, कभी किताब में लिखा हुआ।

सुलग रही थी आग, हमने दी हवा, दहक उठी,
हमी हैं सबसे पूछते, ये क्या हुआ, ये क्या हुआ?

कहाँ से आ गईं हमारे बीच इतनी दूरियाँ?
हमारा घर है, घर से आपके, बहुत सटा हुआ।

ये आपने भी क्या किया जो शर्म आ रही हमें।
छुरा है आपका, हमारे ख़ून से सना हुआ।

तमाम अपने लोग ही तमाशबीन बन गए
बहुत हुआ तो कह दिया, बुरा हुआ, बुरा हुआ।

नरेन्द्र तिवारी

यात्री

वे
सिर्फ यात्री थे
न हिन्दू न मुसलमान।
शहर कहे जाने वाले
इस रौरव नर्क की आदत से बिल्कुल अनजान।
यहाँ से गुजरना
वे समझे थे बड़ा आसान।
वे
चाय की तलाश में थे,
हमने बड़े प्रेम से उन्हें पिलाए छुरे।
गोलियाँ भेंट की,
क्या करें
हमारे पास थे ही नहीं बिस्कुट कुरकुरे।
फिर
उनके लिए बेकार हो चुके सामान से
मजबूरन हमने अपने थैले भरे।
इस हार्दिक स्वागत के बाद भी जो बचे,
आखिरकार अस्पताल में मरे।
आप भी आइए
"आपकी यात्रा मंगलमय हो" वाली
रेलवे की शुभकामना साथ में लाइए।
भारतीय रेल में बैठकर
हमारे जंक्शन से होते हुए
दूसरी दुनियाओं की सैर पर जाइए।
स्वागत है आपका,
आप भी आइए।

नरेश सक्सेना

लौटा नहीं था महमूद गजनवी

इतिहास के बहुत-से झूठों में
एक यह भी है
कि महमूद गजनवी लौट गया था

लौटा नहीं था महमूद गजनवी
सैकड़ों बरस यहीं रहकर
वह प्रकट हुआ अयोध्या में

सोमनाथ में
उसने किया था अल्लाह का काम तमाम
इस बार उसका नारा था
जय श्री राम

नसीम मख़्मूरी

एक आवाज हूं टूटे हुए आसारों से
फ़िक्र जलने लगी अल्फ़ाज के अंगारों से
दाम्ने जीस्त में दाग़ों के सिवा कुछ भी नहीं
क्या ख़रीदेगा कोई शहर के बाजारो से
कैसा आसेब जदा है ये जमाने का चलन
डर सा लगता है मुझे अपनी ही दीवारों से
झाक कर देखिए अन्दर तो अंधेरा होगा
रोशनी लाख निकलती रहे मीनारों से
देखना सोच समझ कर ही उठाना ये कदम
सुनते हैं लोग पलट आएंगे फिर दारों से
कौन रोया था यहा किसने सदाए दी थी
रात फिर पूछ रही थी मेरी दीवारों से
गम को सीने से लगाकर भी रहो शाद नसीम
जिंदगी बोझ है उठती नही बीमारों से

निदा फ़ाज़ली

ग़ज़ल

उठ के कपड़े बदल घर से बाहर निकल जो हुआ सो हुआ
रात के बाद दिन, आज के बाद कल जो हुआ सो हुआ

जब तलक साँस है, भूख है प्यास है, ये ही इतिहास है
रखके कांधे पे हल खेत की ओर चल, जो हुआ सो हुआ

खून से तरबतर, कर के हर रहगुजर, थक चुके जानवर
लकड़ियों की तरह फिर से चूल्हे में जल, जो हुआ सो हुआ

जो मरा क्यूं मरा, जो लुटा क्यूं लुटा, जो जला क्यूं जला
मुद्दतों से है गुम इन सवालों के हल, जो हुआ सो हुआ

मन्दिरों में भजन, मस्जिदों में अजा, आदमी है कहाँ?
आदमी के लिए कोई ताजा गजल, जो हुआ सो हुआ

मैं ज़िन्दगी हूं

तुम्हारी आखों में आज किसके लहू की लाली चमक रही है
ये आग कैसी दहक रही है
पता नहीं! तुमने मेरे धोखे में किसको ज़िंदा जला दिया है
वो कौन था! किसके रास्ते का चिराग़ तुमने बुझा दिया है

ये ख़ून मेरा नही है!
लेकिन तुम्हें भी शायद ख़बर नही है
जहाँ निशाना लगाए बैठे हो, वो मेरी रहगुज़र नही है

मैं कल भी ज़िंदा था
आज भी हू
मैं कोई चेहरा
कोई इमारत
कोई इलाक़ा
नहीं हू
सूरज की रोशनी हू
मैं ज़िन्दगी हूं
तुम्हारे हथियार बेनज़र हैं
तवील सदियों का फ़ासला वक़्त बन चुका है
तलाश तुमको है
जिसकी
वो अब तुम्हारे अन्दर समा चुका है
तुम्हारी मेरी ये दुश्मनी भी है इक मोअम्मा
ख़ुद अपने घर को न आग जब तक लगाओगे तुम
मुझे नहीं मार पाओगे तुम

निर्मल मिलिन्द

ग़ज़ल

मजलूमों, औरतों को किए जा रहे तबाह
कज्जाक कारिंदों को रोकिए जहाँपनाह।

ख़ुशियों के वायदों का शुक्रिया कबूलिए
पर बिगड़े हुक्मरानों पर रखिए ज़रा निगाह

तय हुआ था, निजात दिलायेंगे ख़ौफ़ से
तब किसलिए यहाँ है लुटेरों की वाह-वाह?

आहों का असर होता है तो जलते हैं महल
सिर चढ़ के बोलता है एक न एक दिन गुनाह।

चलिए सम्भल के होश में, अपना भी सोचिए
मिट्टी में मिल गए हैं कई कल के बादशाह।

मैं ज़िन्दगी हूं

तुम्हारी आंखों में आज कि
ये आग कैसी दहक रही है
पता नहीं। तुमने मेरे धोखे
वो कौन था। किसके रास्ते

ये ख़ून मेरा नहीं है।
लेकिन तुम्हें भी शायद ख़
जहाँ निशाना लगाए बैठे ह

मैं कल भी ज़िंदा था
आज भी हूं
मैं कोई चेहरा
कोई इमारत
कोई इलाक़ा
नहीं हूं
सूरज की रोशनी हू
मैं ज़िन्दगी हूं
तुम्हारे हथियार बेनज़र हैं
तवील सदियों का फ़ासला
तलाश तुमको है
जिसकी
वो अब तुम्हारे अन्दर सम
तुम्हारी मेरी ये दुश्मनी भी
ख़ुद अपने घर को न आग
मुझे नहीं मार पाओगे तुम

हो गये नीरस तुम्हारी चिन्तना में—
व्यस्त होकर तर्क औ' अनुमान
हे हमारी कल्पना के पुत्र, हे भगवान!
परिधि यह सकीर्ण, इसमें ले न सकते साँस
गले को जकडे हुए हैं यम-नियम के फाँस
—पुराने आचार और विचार
गगन में नीहारिकाओं को न करने दे रहे अभिसार
छोडकर प्रासाद खोजूँ खोह—
कह रहा है पूर्वजों का मोह
जोर देकर कह रहे ये वेद और पुरान
मूल से चिपटे रहो नादान
बनूँ मैं सज्जन, सुशील विनीत
हार को समझा करूँ मैं जीत
क्रोध का अक्रोध से कर अन्त
बनूँ मैं आदर्श सन्त
रह न जाये उष्णता कुछ रक्त में अवशिष्ट
गुरूजनों को भी यही था इष्ट
सड गयी है आँत
पर दिखाये जा रहे हैं दाँत
छोडकर सकोच, तजकर लाज
दे रहा है गालियाँ यह जीर्ण-शीर्ण समाज
खोलकर बन्धन, मिटाकर नियति के आलेख
लिया मैंने मुक्ति पथ को देख
नदी कर ली पार, उसके बाद
नाव को लेता चलूँ क्यों पीठ पर मैं लाद
सामने फैला पडा है शतरज-सा ससार
स्वप्न में भी मैं न इसको समझता निस्सार
इसी में भव, इसी में निर्वाण
इसी में तन-मन, इसी में प्राण
यही जड-जगम सचेतन औ' अचेतन जन्तु

नागार्जुन

कल्पना के पुत्र हे भगवान

कल्पना के पुत्र हे भगवान
चाहिए मुझको नहीं वरदान
दे सको तो दो मुझे अभिशाप
प्रिय मुझे है जलन, प्रिय सन्ताप
चाहिए मुझको नहीं यह शान्ति
चाहिए सन्देह, उलझन, भ्रान्ति
रहूँ मैं दिन-रात ही बेचैन
आग बरसाते रहें ये नैन
करूँ मैं उद्दंडता के काम
लूँ न भ्रम से भी तुम्हारा नाम
करूँ जो कुछ, सो निडर, निश्शंक
हो नहीं यमदूत का आतंक
घोर अपराधी-सदृश हो नत बदन निर्वाक
बाप-दादों की तरह रगडूँ न मैं निज नाक–
मन्दिरों की देहली पर पकड़ दोनों कान
हे हमारी कल्पना के पुत्र, हे भगवान,
युगों से आराधना की, आ गये अब तंग
—झाल और मृदंग
शंख करता आ रहा था युगों से आक्रन्द
तुम न पिघले, पड़ गयी आवाज उसकी मन्द
न अब तक सुलझे तुम्हारे बाल
थक गयी लाखों उँगलियाँ, हो गया अतिकाल
अँधेरे में रहे लोग टटोल–
ठोस हो या पोल ?

हो गये नीरस तुम्हारी चिन्तना में–
व्यस्त होकर तर्क औ' अनुमान
हे हमारी कल्पना के पुत्र, हे भगवान।
परिधि यह संकीर्ण, इसमें ले न सकते साँस
गले को जकड़े हुए हैं यम-नियम के फाँस
–पुराने आचार और विचार
गगन में नीहारिकाओं को न करने दे रहे अभिसार
छोड़कर प्रासाद खोजूँ खोह–
कह रहा है पूर्वजों का मोह
जोर देकर कह रहे ये वेद और पुरान
मूल से चिपटे रहो नादान
बनूँ मैं सज्जन, सुशील विनीत
हार को समझा करूँ मैं जीत
क्रोध का अक्रोध से कर अन्त
बनूँ मैं आदर्श सन्त
रह न जाये उष्णता कुछ रक्त में अवशिष्ट
गुरूजनों को भी यही था इष्ट
सड़ गयी है आँत
पर दिखाये जा रहे हैं दाँत
छोड़कर संकोच, तजकर लाज
दे रहा है गालियाँ यह जीर्ण-शीर्ण समाज
खोलकर बन्धन, मिटाकर नियति के आलेख
लिया मैंने मुक्ति पथ को देख
नदी कर ली पार, उसके बाद
नाव को लेता चलूँ क्यों पीठ पर मैं लाद
सामने फैला पड़ा है शतरंज-सा संसार
स्वप्न में भी मैं न इसको समझता निस्सार
इसी में भव, इसी में निर्वाण
इसी में तन-मन, इसी में प्राण
यहीं जड़-जंगम सचेतन औ' अचेतन जन्तु

यही 'हाँ', 'ना', 'किन्तु' और 'परन्तु'
यही है सुख-दुख का अवबोध
यही हर्ष-विषाद, चिन्ता-क्रोध
यही है सम्भावना, अनुमान
यही स्मृति-विस्मृति सभी का स्थान
छोड़कर इसको कहाँ निस्तार
छोड़कर इसको कहाँ उद्धार
स्वजन-परिजन, इष्ट-मित्र, पड़ोसियों की याद
रहे आती, तुम रहो यों ही वितण्डावाद
मूँद आँखें शून्य का ही करूँ मैं तो ध्यान ?
कल्पना के पुत्र हे भगवान !

•

भूले स्वाद बेर के

सीता हुई भूमिगत, सखी बनी सूपन खा
बचन बिसर गए गए देर के, सबेरे के।
बन गया साहूकार लंकापति विभीषण
पा गये अभयदान श्रावक कुबेर के।
जी उठा दसकंधर, स्तब्ध हुए मुनिगण
हावी हुआ स्वर्णमृग कन्धों पर शेर के।
बुढभस की लीला है, काम के रहे न राम
शबरी न याद रही, भूले स्वाद बेर के।

नीलाभ

दंगा 1989

1

पाँच पुलिस थानों में देखो लूट-पाट का राज
सोने की धरती पर देखो दंगा भड़का आज

एक दूसरे का मुँह ताकें सारे नगर निवासी
गली और बाजार बन्द है तकलीफ़ें हैं ख़ासी
जितने मुँह उतनी बातें हैं घबराहट है छायी
कुछ भी पता नही चलता है ऐसी बिपदा आयी
अफ़रातफ़री मची हुई है बन्द जरूरी काज
सोने की धरती पर देखो दगा भड़का आज

2

हर नुक्कड़ पर पुलिस-पी ए सी हर कोने पर फ़ौज
जनता मरे भूख से लेकिन अफ़सर मारें मौज
गली गली सन्नाटा छाया कोई नही है साथ
किसको पड़ी मौत के मुह में देने जाये हाथ

डरे हुए हैं सब बाशिन्दे ख़ामोशी है छायी
जाने सुबह जेब में अपनी कैसी आफ़त लायी
पकड़-धकड़ का जाल बिछा है फँसे जाते लोग
गली-मुहल्लों में फैला है अफ़वाहो का रोग

मँहगाई के बाद लड़ाई लगी कोढ़ में खाज
सोने की धरती पर देखो दगा भड़का आज

3

घर-घर में है हुई तलाशी दरवाजे हैं टूटे
हर आँगन में बिखरे बरतन कुछ टूटे कुछ फूटे
बच्चा सहमा औरत सहमी बूढ़े हुए उदास

सबके दिल में अमन-चैन की तड़प रही है प्यास

आँखों से आँसू बहते हैं सीने में है आह
दुख का दरिया बह निकला है नहीं है कोई थाह
कैसे इनको आस बँधाये कोई समझ न पाता
आँखें नीची किये शर्म से वापस है मुड़ जाता

आम नागरिक पर सत्ता की गिरी अचानक गाज
सोने की धरती पर देखो दगा भड़का आज

4
पुलिस और गुण्डों का अबकी जबरदस्त गठजोड़
कैसे मिले लूट की दौलत लगी हुई है होड़
पहले लूटा था गुण्डों ने अब पी ए सी आयी
ख़ून सने हाथों से उसने मारी लूट मचायी

जिसके घर में माल-मता था वह तो हुआ शिकार
जिसके पास नहीं था कुछ भी उसने खायी मार
बेगुनाह पकड़े जाते हैं दोषी मौज मनायें
लोग घिरे हैं सगीनों से मन मारे रह जायें

अपराधी तत्वों ने पहने अपने सिर पर ताज
सोने की धरती पर देखो दगा भड़का आज

5
बम पिस्तौल चला कर गुण्डे मूँछ ऐंठ कर घूमें
तेल कान में डाल प्रशासन सत्ता-मद में झूमे
पुलिस और अधिकारी आ कर पकड़ें सबके कान
भारत में क्या काम तुम्हारा भागो पाकिस्तान

ठाकुर-बाँभन, कुर्मी-यादव भेद इन्हीं ने डाला
शिया और सुन्नी को बाँटा ठोंक अकल पर ताला
हरिजन और दलित वर्गों को इसी तरह धमकायें
बाँट-बाँट कर लोगों को वे अपनी धाक जमायें

दंगा 1989

1.
पाँच पुलिस थानों में देखो लूट पाट का राज
संगम की धरती पर देखो दंगा भड़का आज

एक दूसरे का मुह ताकें सारे नगर निवासी
गली और बाजार बन्द हैं तकलीफ़ें हैं ख़ासी
जितने मुह उतनी बातें हैं घबराहट है छायी
कुछ भी पता नहीं चलता है ऐसी विपदा आयी
अफ़रातफ़री मची हुई है बन्द ज़रूरी काज
सोने की धरती पर देखो दंगा भड़का आज

2.
हर नुक्कड़ पर पुलिस-पी.ए.सी. हर कोने पर फ़ौज
जनता मरे भूख से लेकिन अफ़सर मारें मौज
गली गली सन्नाटा छाया कोई नहीं है साथ
किसको पड़ी मौत के मुह में देने जाये हाथ

डरे हुए हैं सब बाशिन्दे ख़ामोशी है छायी
जाने सुबह जेब में अपनी कैसी आफ़त लायी
पकड़-धकड़ का जाल बिछा है फँसे जाते लोग
गली-मुहल्लों में फैला है अफ़वाहों का रोग

मँहगाई के बाद लड़ाई लगी कोढ़ में खाज
सोने की धरती पर देखो दंगा भड़का आज

3.
घर-घर में है हुई तलाशी दरवाज़े हैं टूटे
हर आँगन में बिखरे बरतन कुछ टूटे कुछ फूटे
बच्चा सहमा औरत सहमी बूढ़े हुए उदास

सबके दिल में अमन-चैन की तड़प रही है प्यास

आँखों से आँसू बहते हैं सीने में है आह
दुख का दरिया बह निकला है नहीं है कोई थाह
कैसे इनको आस बँधाये कोई समझ न पाता
आँखें नीची किये शर्म से वापस है मुड़ जाता

आम नागरिक पर सत्ता की गिरी अचानक गाज
सोने की धरती पर देखो दंगा भड़का आज

4.
पुलिस और गुण्डों का अबकी जबरदस्त गठजोड़
कैसे मिले लूट की दौलत लगी हुई है होड़
पहले लूटा था गुण्डों ने अब पी.ए.सी. आयी
खून सने हाथों से उसने भारी लूट मचायी

जिसके घर में माल-मता था वह तो हुआ शिकार
जिसके पास नहीं था कुछ भी उसने खायी मार
बेगुनाह पकड़े जाते हैं दोषी मौज मनायें
लोग घिरे हैं संगीनों से मन मारे रह जायें

अपराधी तत्वों ने पहने अपने सिर पर ताज
सोने की धरती पर देखो दंगा भड़का आज

5.
बम पिस्तौल चला कर गुण्डे मूँछ ऐंठ कर घूमें
तेल कान में डाल प्रशासन सत्ता-मद में झूमे
पुलिस और अधिकारी आ कर पकड़ें सबके कान
भारत में क्या काम तुम्हारा भागो पाकिस्तान

ठाकुर-बाँम्हन, कुर्मी-यादव भेद इन्हीं ने डाला
शिया और सुन्नी को बाँटा ठोंक अकल पर ताला
हरिजन और दलित वर्गों को इसी तरह धमकायें
बाँट-बाँट कर लोगों को वे अपनी धाक जमायें

लोग लड रहे हैं आपस में दौलत करती राज
सोने की धरती पर देखो दगा भडका आज

6
आठ दिनों तक सोये मन्त्री फिर सहसा वे जागे
हालत पर काबू पाने को मोटर ले कर भागे
बडके मन्त्री जी ने ठोंकी अफ़सरान की पीठ
सब कुछ ठीक हुआ है अब तक बोले बन कर ढीठ

जिस-जिसने की चमचेबाजी उसको पास बिठाया
जिसने किया विरोध उसे नैनी थाने भिजवाया
सरकिट हाउस में होती थी मन्त्री की जयकार
लोगो का दुखडा सुनने को नहीं कोई तैयार

ऐसी ही सगत है इनकी ऐसा इनका काज
सगम की धरती पर देखो दगा भडका आज

7
नेता बैठा था अमरीका तकलीफो से दूर
जनता तडप रही कर्फ्यू में बेबस औ मजबूर
नेता ने बस अख़बारो में एक अपील छपायी
दुखती हुई चोट पर जैसे ठोकर और लगायी

जहाँ पडे थे डण्डे सबको जहाँ पडी थी मार
वहाँ गिरी फ़िल्मी नेता के शब्दो की बौछार
गुजर गया लोगों पर से जब तकलीफो का दौर
दल-बल ले कर आया नेता सत्ता का सिरमौर

ऐसा ही होता है फ़िल्मी नेताओं का काज
सोने की धरती पर देखो दगा भडका आज

8
कभी बैठ कर सोचो भैया ये दगे क्यो होते
बीज जहर के बीच हमारे कौन लोग हैं बोते
रोटी, शिक्षा, रोजगार की जब-जब होती माँग

दंगे की सूली पर सत्ता सब को देती टाँग।

हिन्दु-मुस्लिम सिख-ईसाई इस धरती के जाये
सत्ता के ही भेद-भाव से बनते आज पराये
चाहे किसी दिशा से देखो यही समझ में आता
तानाशाही और अमीरी में है सीधा नाता

कैसी यह सरकार हमारी घोल पी गयी लाज
सोने की धरती पर देखो दंगा भड़का आज

9
काम नहीं चलने वाला है इस सत्ता से भैया
बदलो बदलो जल्दी बदलो इस सत्ता को भैया
किसे लाभ है मँहगाई से इसको अब तुम जानो
कौन बढ़ाता है बेकारी दुश्मन तुम पहचानो

बदलो ईंट-पलस्तर चौखट बदलो कुल बुनियाद
दहशत की दीवार गिराओ छोड़ो अब फरियाद
इसी जनम में कदम बढ़ाओ बदलो दुनिया सारी
दौलत और दमन को बदलो भूख और बेकारी

रेशा-रेशा जुड़ कर तुम रस्सी जैसे बन जाओ
पूँजी औ सत्ता की साजिश को तत्काल मिटाओ
अपने बच्चों की ख़ातिर तुम करो आज कुरबानी
पहले से बेहतर दुनिया है उन्हें सौंप कर जानी

संगम की धरती पर देखो दंगा भड़का आज
इस सत्ता को बदलो, बदलो इस सत्ता को आज

नया अजूबा

आज इन्सानियत को कत्ल किया
वो ही कहते हैं, खुद ही इन्सान ने
वो जो अपनी शिनाख़्त भूल गया

और एक लाश, बे कफ़न बे गौर
रास्ते में पड़ी होई जो मिली, अपने ही खून में नहाई हुई
वो के जिस्मों का मुर्दाख़ाना है
और वहां पोस्ट मार्टम के लिए रोज लाशों को लाया जाता है
मौत का राज जानने के लिए
नयी तहज़ीब के जो नश्तर जन, जिनको जर्राह कह नहीं सकते
सीने मुर्दों के चाक करते हैं, हैं जो अन्दर छुपे हुए आज़ा
उनको बेपरदा देखने के लिए, उनकी आखों में कितनी कुव्वत है

लाश को चीर कर भी देख लिया
कत्ल का इस प मिल सका न निशां
फ़ैसला, जब कोई न हो पाया सीनए चाक-चाक पर उसके
आख़िरिश ये रिपोर्ट लिख दी गई, इसने घबरा के ख़ुदकुशी की है
अपने ख़ंजर से खुद ये कत्ल हुई
खुद ही मक़तूल, ख़ुद ही क़ातिल है
जिन्दगी का ये इसकी हासिल है

इसकी बदबू तो सबने की महसूस
कोई उसके करीब आ न सका
मौत का उसकी राज पा न सका
वो तो सब उससे दूर-दूर रहे
वो जो हिन्दू थे और मुसलमान थे
जानते थे सवाब और गुनाह
कोई इसको मगर न जान सका
अपनी पहचान से अलग होकर

ये भी उससे जुदा था, वो भी जुदा
उसने नफ़रत से राम-राम कहा
ये हिक़ारत से पढ़ कर इस्तग़फ़ार
चल दिए अपने-अपने रस्तों पर
इसकी पूजा का वक़्त आया था
और पढ़नी थी जाकर उसको नमाज़
जब मसीहा का दौर आएगा
आसमानों से वो जो उतरेगा
और नई रूह इसमें फूंकेगा
ये बताएगी अपनी मौत का राज़
जिसके होंठों पर अब है मोहरे सुकूत
ख़ुद ब ख़ुद कल वो टूट जाएगी
वक़्त का ये भी मोजज़ा होगा
ये भी मुमकिन है कोई बात उसे
अपने पिछले जन्म की याद न हो
और इक्कीसवीं सदी के लिए
इसकी हस्ती नया अजूबा हो

प्रेमकुमार गौतम

वे नहीं आएंगे

वे नहीं देखेंगे तुम्हें
नहीं सुनेंगे तुम्हारी आवाज
उन्हें नहीं है खबर
किस हाल में हो तुम
उन्हें नहीं है फिक्र
तुम भूखे हो या प्यासे

यह भी अजीब बात है कि
तुम्हें बेहद अकीदा है उन पर
मगर खतरनाक क्षणों में नबर डायल करते हो
पुलिस स्टेशन का
झूठा निकला तुम्हारा अकीदा
तुम्हारी पुकार पर नहीं आए
तुम्हारे भगवान-खुदा
वे नहीं आएंगे
नहीं बचाएंगे तुम्हें
तुम्हारे पड़ौसी। मित्र। हमदर्द बचाएंगे तुम्हें
पुलिस आएगी देर में
तूफान गुजर जाने के बाद
तफ्तीश करने
कौन मरा। कौन घायल
कौन थे वे
हिन्दू या मुसलमान।

बाक़ी सब ग़लत है

ग़लत है
सरासर ग़लत
नहीं मरा हरी
नहीं हुआ करीम का क़त्ल
नहीं लुटी कमला
सबीना की आबरू
दंगाइयों ने नहीं जलाए हिन्दू-मुसलमानों के घर
ख़बरें नहीं हैं अख़बारों की सच
धर्म से मौत का क़तई तअल्लुक़ नहीं

सच तो ये है–
मरा है इन्सान
लुटा है इन्सान
मिटा है इन्सान
जला है इन्सान
ढहा दी गई अम्नो सुकून की बुलन्द इमारत
वहशियों ने लूट ली सद्भावना की आबरू
धर्म की आड़ में
लोकतंत्र की दीवारों पर चली हैं
दना-दन कुदालें
सच ये है
बाक़ी ग़लत है . . सब ग़लत

बलराम गुमाश्ता

उस आदमी के बारे में

अस्त-व्यस्त इस घर में
कुछ भी नहीं अपनी जगह
खोजने पर स्क्रूड्राइवर भी नहीं
कम-से-कम कसलें
एक ढीला स्क्रू
ताकि संभव हो कर पाना
घर में थोड़ी-सी रोशनी

रात होने को है
गुल हो रही हैं बत्तियां
अंधेरे में डूब जायेंगे सब
सुझाई नहीं देगा
हाथ को अपना हाथ
एक कमरे में सिकुड़कर
रह जायगा पूरा घर

ऐसे में चाकू की नोक से ही
ठीक करनी होगी बिजली
कसने होंगे ढीले बटन
यह जानते हुए भी
कि सुरक्षित नहीं होता
बिजली के साथ
चाकू से काम लेना

बेटी जरा चाकू तो देना
अरे भई लाओ न
क्या हुआ है
आखिर इस घर में
कोई किसी की सुनता क्यों नहीं

अपनी ज़बान

ठीक से देखो वहीं कहीं होगा
कोई पडोसी तो घर आता नहीं
घर का ही आदमी होगा

आखिर कहाँ जायेगा चाकू
चाकू के पैर नहीं होते
चाकू अपने आप नहीं चलते
अख़बार में लिपटा
रात जो कवितायें लिखीं
उन पन्नों में
किताबों के बीच
सभी जगह देखो
अरे, हाँ
ऊपर भगवान् के आले में देखा
जरा कुरान के नीचे
रामायण के ऊपर
ध्यान से तो देखा

आजकल कुछ दिनों से
अकसर
मैं वहीं रखा देखता हू चाकू
सोचता हू
घर के उस आदमी के बारे में

बलराम गुमाश्ता

उस आदमी के बारे में

अस्त-व्यस्त इस घर में
कुछ भी नहीं अपनी जगह
खोजने पर स्क्रूड्राइवर भी नहीं
कम-से-कम कसलें
एक ढीला स्क्रू
ताकि संभव हो कर पाना
घर में थोड़ी-सी रोशनी

रात होने को है
गुल हो रही हैं बत्तियां
अंधेरे में डूब जायेंगे सब
सुझाई नहीं देगा
हाथ को अपना हाथ
एक कमरे में सिकुड़कर
रह जायगा पूरा घर

ऐसे में चाकू की नोंक से ही
ठीक करनी होगी बिजली
कसने होंगे ढीले बटन
यह जानते हुए भी
कि सुरक्षित नहीं होता
बिजली के साथ
चाकू से काम लेना

बेटी जरा चाकू तो देना
अरे भई लाओ न
क्या हुआ है
आखिर इस घर में
कोई किसी की सुनता क्यों नहीं

अपनी जबान

लकीस ज़फ़ीरूल हसन

ाल

घर के सहमे मिंचे हुए दरवाज़ों के बाहर
खे छूट रहे हैं—फुलझड़िया जल रही है
मैंने अपने कमरे की लाईट बुझा दी है
कहीं कोई जान न ले कि मैं यहा मौजूद हूं
कमरे में घुप अंधेरा है
: बाहर मुडेरो पर दीप जल रहे है
र ये दीवाली है तो कैसी दीवाली है?
मुझे अपना कमरा अंधेरा रखने पर मजबूर कर रही है
ीं दूर फायरिंग हो रही है
इस आवाज को अच्छी तरह पहचानती हूं
नी बार सुन चुकी हू कैसे न पहचानूं
गिनत बार चल चुकी हैं ये गोलियां
र हर बार इन्सानियत को
राम!' कह कर गिरते देखा है मैंने।
द मुझे इन गोलियों पर कोई हैरानी नहीं होती
ानी तो मुझे अपने पडोसियों पर है
कहते हैं कि गलत हो रहा है
र भी खुशी मना रहे हैं
' दरवाजो और खिड़कियो को टटोल कर
के बन्द होने का अदाजा है
' न चाहते हुए भी
जा रही हूं
ते
ादमी
े
ाम
ाय
ने

एकता का पयाम

कल तक गले मिले थे रामो-रहीम वाले
आपस में पड़ गए है उल्फ़त के आज लाले
दिल हो गए ग़ज़ब है, दोनों तरफ़ के काले

फ़िरका परस्तियों का सांप उनको डस गया है
ये प्यार के जो बन्दे बैर उनमें बस गया है
उनके दिलों के शोले कैसे कोई बुझाए
धारे प्रेम रस के आकर कोई बहाए

फैली हुई है दहशत अमनो सुकूं है उनका
इन्सां बने दरिन्दे अपनों को फाड़ डाला
मुख़लिस नहीं नमाज़ी पापी बने पुजारी
बेकार बन्दगी है इस दौर में हमारी

मजहब का नाम लेकर फ़ितने उठा रहे हैं
जन्नत निशां वतन को दोज़ख़ बना रहे हैं
अपनी ही गरदनों पर ओर चला रहे हैं

ये मज़हबो के झगड़े ये क़त्लोखू के मज़र
ये भूख से बिलकते बच्चे घरों के अंदर
क़ुरआन को भुलाया, गीता का पाठ खोया
मुस्लिम रहे न मुस्लिम, हिन्दू भी आज बदला

ये है दुआ हमारी, हम सब में दोस्ती हो
सीने हो साफ़ सबके, काफ़ूर दुश्मनी हो
शीरो शकर की सूरत, रामो रहीम रहीम वाले
बन कर रहे बिरादर रब्बे करीम वाले

बिलकीस ज़फ़ीरूल हसन

ग़ज़ल

मेरे घर के सहमे भिंचे हुए दरवाज़ों के बाहर
पटाखे छूट रहे है–फुलझड़िया जल रही है
और मैंने अपने कमरे की लाईट बुझा दी है
कि कहीं कोई जान न ले कि मैं यहा मौजूद हू
मेरे कमरे में घुप अधेरा है
और बाहर मुडेरो पर दीप जल रहे है
अगर ये दीवाली है तो कैसी दीवाली है?
जो मुझे अपना कमरा अधेरा रखने पर मजबूर कर रही है
कहीं दूर फायरिंग हो रही है
मैं इस आवाज को अच्छी तरह पहचानती हू
इतनी बार सुन चुकी हू कैसे न पहचानू
अनगिनत बार चल चुकी हैं ये गोलिया
और हर बार इन्सानियत को
'हे राम!' कह कर गिरते देखा है मैंने।
अब मुझे इन गोलियों पर कोई हैरानी नहीं होती
हैरानी तो मुझे अपने पडोसियों पर है
जो कहते हैं कि गलत हो रहा है
फिर भी खुशी मना रहे हैं
मैंने दरवाजो और खिडकियों को टटोल कर
इनके बन्द होने का अदाजा लगाया है
और न चाहते हुए भी
सोचे जा रही हू
कि वे आदमी–जिसे मैं तमाम उम्र गलतगो मानती रही
वो आदमी–जो कहता था कि
हम दो अलग-अलग कौमें है
और हम कभी मिल जुल कर नहीं रह सकते
कहीं–सच तो नही कह रहा था?
नहीं-नहीं वो सच्चा नहीं था–हो ही नहीं सकता
मेरे घर में–कोई भी तो एक तरह नहीं सोचता

एकता का पयाम

कल एक गले मिले थे रामो-रहीम वाले
आपस में पड़ गए है उल्फ़त के आज लाले
दिल हो गए ग़ज़ब है, दोनों तरफ़ के काले

फ़िरक़ा परस्तियों का सांप उनको डस गया है
ये प्यार के जो बन्दे बैर उनमें बस गया है
उनके दिलों के शोले कैसे कोई बुझाए
प्यारे प्रेम रस के आकर कोई बहाए

फैली हुई है दहशत अम्नो सुकूं है उनका
इन्सां बने दरिन्दे अपनों को फाड़ डाला
मुख़लिस नहीं नमाज़ी पापी बने पुजारी
बेकार बन्दगी है इस दौर में हमारी

मज़हब का नाम लेकर फ़ितने उठा रहे हैं
जन्नत निशा वतन को दोज़ख़ बना रहे हैं
अपनी ही गरदनों पर ज़ोर चला रहे हैं

ये मज़हबो के झगड़े ये कत्लोखू के मंज़र
ये भूख से बिलकते बच्चे घरों के अंदर
क़ुरआने को भुलाया, गीता का पाठ खोया
मुस्लिम रहे न मुस्लिम, हिन्दू भी आज बदला

ये है दुआ हमारी, हम सब में दोस्ती हो
सीने हो साफ़ सबके, काफ़ूर दुश्मनी हो
शीरो शकर की सूरत, रामो रहीम रहीम वाले
बन कर रहे बिरादर रब्बे करीम वाले

बिलकीस ज़फ़ीरूल हसन

ग़ज़ल

मेरे घर के सहमे मिंचे हुए दरवाज़ों के बाहर
पटाखे छूट रहे हैं–फुलझड़िया जल रही है
और मैंने अपने कमरे की लाईट बुझा दी है
कि कहीं कोई जान न ले कि मैं यहा मौजूद हू
मेरे कमरे में घुप अंधेरा है
और बाहर मुंडेरो पर दीप जल रहे है
अगर ये दीवाली है तो कैसी दीवाली है?
जो मुझे अपना कमरा अंधेरा रखने पर मजबूर कर रही है
कहीं दूर फायरिंग हो रही है
मैं इस आवाज़ को अच्छी तरह पहचानती हू
इतनी बार सुन चुकी हू कैसे न पहचानू
अनगिनत बार चल चुकी हैं ये गोलिया
और हर बार इन्सानियत को
'हे राम!' कह कर गिरते देखा है मैंने।
अब मुझे इन गोलियों पर कोई हैरानी नहीं होती
हैरानी तो मुझे अपने पडोसियों पर है
जो कहते हैं कि ग़लत हो रहा है
फिर भी खुशी मना रहे हैं
मैंने दरवाज़ो और खिडकियों को टटोल कर
इनके बन्द होने का अदाजा लगाया है
और न चाहते हुए भी
सोचे जा रही हूं
कि वे आदमी–जिसे मैं तमाम उम्र ग़लतगो मानती रही
वो आदमी–जो कहता था कि
हम दो अलग-अलग कौमें है
और हम कभी मिल जुल कर नहीं रह सकते
कहीं–सच तो नहीं कह रहा था?
नहीं-नहीं वो सच्चा नहीं था–हो ही नहीं सकता
मेरे घर में–कोई भी तो एक तरह नहीं सोचता

न मेरा शौहर मेरी तरह न बेटे न बेटियां
हम में इख़्तलाफ़ राय होता ही रहता है
मगर एक साथ रहते हैं
इसलिए कि
हमें एक घर चाहिए
घर।
सलामती के लिए
सेहत के लिए
ज़िन्दगी के लिए
जिसके बग़ैर हम रह ही नहीं सकते
उफ़्! फिर एक क़यामत खेज़ धमाका।
शायद पश्चिमी तरफ़
मेरे होशोहवास शल हो कर रह गए
अब तो मैं कुछ सोच भी नहीं सकती

ग़ज़ल

चुप चुप झेलते रहना कब तक, बंद ज़बां अब खोल के देख
कुछ तो नतीजा निकलेगा ही, हरफ़े बग़ावत बोलके देख
बस्ती-बस्ती, नगर-नगर, फिर इक विषकन्या नाच दिखाए
छलकाए हर मदिरा, हर इक भाव हलाहल घोल के देख
हक़ के नाम पे, हक़ का ख़ून बहाने वाले, और मासूम?
इस लथपथ चादर पे लहू है लेकिन किसका? खोल के देख
किसकी शक्ल है असली किसके मुंह पे मुखौटा, सब खुल जाए
अपनी अक्ल की मीज़ानों में, चेहरा-चेहरा तोल के देख
अपने हित की बात करें और दीनधर्म का नाम धरें
सच्चा धरम तो प्यार है भाई, प्यार की बानी बोलके देख
सूरज चाँद सितारे, उजियारों से तेरा घर भर जाएं
तू कमरे के कील जड़े ये दरवाज़े तो खोल के देख
किसको पता ये पत्थर धरती, इक दिन सोना बन ही जाए
अपनी आस के शबनम मोती इस मिट्टी में घोल के देख
शायद इस बेहिस से बदन में, जान कहीं पर मिल ही जाए
मानवता की लाश की नब्ज़ें ए 'बिलक़ीस' टटोल के देख

बेताब अली पुरी

ग़ज़लें

आ बसा है हिन्द में कोई यज़ीद
हो गई है बाबरी मस्जिद शहीद
ग़म ज़दा ये लोग अफ़सुर्दा भी थे
कुछ ही लोगों ने मनाई खूब ईद
ये सियासत दान उफ़ अल्लाह गवाह
क्या कहें हम ओर कुछ इससे मज़ीद?
कैसा है दस्तूर अपना दोस्तों
हो रही है इसकी अब मिट्टी पलीद
मिट गया है जिसका अब नामोनिशान
हो सकेगी अब भला क्या उसकी दीद
दर्स चिश्ती ने दिया है प्यार का
दरसेउल्फ़त दे गए नानक फ़रीद
आओ भाईचारा फिर पैदा करें
प्यार है नफ़रत मिटाने की कलीद
कोई अच्छा सा निकल आएगा हल
आज भी हैं दोस्तों हम पुरउम्मीद
हम तो हैं बेताब सब से कह रहे
आओ मिल बैठे करें गुफ़्तोशुनीद

कहने को फ़रजाने हम, लेकिन है दीवाने हम
शम्में हम परवाने हम, बुलबुल हम काशाने हम
साक़ी हम पैमाने हम, ढूंढ रहे मयख़ाने हम
हे से हिन्दू मीम से मुस्लिम, मस्ती में मस्ताने हम
दिल की बातें दिल समझे, बस जाने पहचाने हम
हक़ से रहकर दूर बहुत, लिखते है अफ़साने हम
क़ातिल और मक़तूल हमीं, देते हैं नज़राने हम
लफ़्ज़ों के बेताब यहा, बुनते ताने बाने हम

मेरे इन्सान की मौत

दंगों के शुरू होते ही
जब भी ढूँढना चाहा तुम्हें
शहर में कर्फ़्यू लग गया।
बंद खिड़की के टूटे शीशे से
डरते हुए झाँका, तो
निरीह पशु की भाँति
तुम्हें इधर से उधर घबराते हुए
दौड़ता पाया।

कई बार,
हाँ, कई-कई बार।
मेरे घर का रूख लिये
भागते आये थे तुम।
मगर, हर बार
'राम-भवन' पढ़कर
उल्टे पैर दौड़ पड़े थे तुम।

ओ रे इन्सान!
मेरे भाई!!
मैं भी नहीं पुकार सका तुम्हें।
मेरी जुबान को तो
लकवा मार गया था
पास के 'शिव-सदन' द्वारा
डाँट दिये जाने का भय था।

मज़हर इमाम

रोशनी ! रोशनी !

नफ़स की आमदोशुद है के जूए ख़ूं है रवाँ
सभी हैं, तुम हो कि हम हो, हबाब की सूरत
गुबारे रह की तरह इजतराब में है हयात
सुकूं का नाम भी आता है ख़्वाब की सूरत
सवाल गूंजते रहते हैं जहन में पैहम
नजर कहीं नहीं आती जवाब की सूरत

चरागे दैरो हरम रोशनी की ख़ातिर हैं
इन्हीं से चादरे इस्मत जलाई जाती है
ये नूर बार सहीफ़ों के जगमगाते वरक़
इन्हीं से आग दिलों में लगाई जाती है
फ़िज़ा में नेजे उछलते हैं राम की ख़ातिर
रहीम कह के क़यामत मचाई जाती है
हमारे पाँव में हैं एक ही सी जंजीरें
हमारा दर्द वही है, तुम्हारा दर्द वही
हमारे जिस्म का रंगे लहू भी यकसा है
शरारे अश्क वही है, फ़ुगाने सर्द वही
हमारा और तुम्हारा है एक सा अन्जाम
सफ़र की राह वही, रास्ते की गर्द वही

ये नफ़रतों का तसादुम है ज़ुल्मतों का फ़साद
फ़सादियों के लिए जिस्मोजा खिलौना हैं
हमीं को करनी है अपने मरज की चारागरी
कि चारा साज हैं जितने रक़ीबे ईसा है
नए चिराग जलाने हैं साथ ही मिलकर
कि हम भी, तुम भी, नई रोशनी के जूया हैं

मधु यतीश

कविता

"गुरू नानक ने कहा था
हे प्रभु। ये गगन मण्डल तेरी पूजा की थाली है,
सूरज और चन्द्रमा
उसमें जगमगाते रत्न हैं,
वायु ही तेरा पखा है,
ओ प्रकाश के देवता, तेरी जय हो!"

हम सब भूल रहें है गुरूओं की वाणी
धुधला गयीं हैं हमारी आस्थाए,
धीरे धीरे खो रहें है, हम अपने भीतर का प्रकाश
अधकार में भटक रहें है,
घिनौनी घृणा और अविश्वास के बीच
हमारे सपने झूल रहे हैं।

मसूदा हयात

"ग़ज़ल"

जो न देखा जाए आखों से वो मजर देखिए
हर तरफ चलता हुआ गरदन पे खंजर देखिए
था कभी आबाद और खुशियों के डेरे थे जहा
किस कदर वीरा है, अब आकर मेरा घर देखिए
सर छुपाने की कोई भी अब जगह मिलती नहीं
जिस तरफ भी जाइए, हाथों में पत्थर देखिए
खम न होते थे जो सर, हरगिज किसी के सामने
सामने सबके वो झुक जाते हैं क्यूकर देखिए
मुह छुपाकर घर में कैसे मुतमइन बैठे है आप
कैसी बरपा है कयामत घर से बाहर देखिए
हर तरफ मस्जिद का चर्चा, हर तरफ मन्दिर का शोर
इनकी जद में आ गए कितने ही पैकर देखिए
रोज ही आपस में कहते हैं कि हम सब एक हैं
रोज ही चलते हुए आपस में खजर देखिए
सूरते तस्वीर हम खामोश हैं ये सच सही
हश्र सा लेकिन बपा है दिल के अन्दर देखिए
हा हमें तो काटनी है राहें गम में अब 'हयात'
आप खुश है, आप तो खुशियों के मंजर देखिए

महरउद्दीन ख़ाँ

ग़ज़ल

तप रहा है देश सारा भाई जी
अब रजाई का न झंझट आप लें
गर्म है मंदिर का मस्जिद का अलाव
ठंड लगती है तो इस पर ताप लें
फट गई बनियान निक्कर तंग है
शर्म लगती है तो चेहरा ढाप लें
बढ रही महंगाई बढ़ने दीजिए
मारकर छापे न उन का शाप लें।

ग़ज़ल

ज़र्रा ज़र्रा डरा हुआ है पत्थर भी घबराया है
बस्ती की वीरानी रोती किसने इसे जलाया है
नजमा रोती शीला रोती राधा और सबीहा भी
ओ वोटों के सौदागर क्यों तूने इन्हे रूलाया है
किसना मरा करीम मर गया रामू नूर इलाही भी
मंदिर मस्जिद की वेदी पर किसने इन्हे चढ़ाया है
गली गली में घूमे थे तुम कहते थे सद्भाव बना
भारत मा के आंचल पर फिर किसने दाग लगाया है

महेश अश्क

ग़ज़ल

बना नहीं था जो अब तक, वहीं बनाना था
जो बन चुका था, उसे तोड़-फोड़ जाना था।

कठिन बहुत ही अंधेरों से पार पाना था
मगर हमें तो दिये पर दिया जलाना था।

पड़ोसियों की निगाहें वहीं-वहीं थी लगी
जहां-जहां से हमें अपना घर बचाना था।

हरेक शाख प' थे सुर्खो-सर्द अंगारे–
लहू-लहू में अभी यह उबाल आना था।

हमीं सफ़र थे, हमीं कारवां, हमीं मंज़िल
हमीं थे राह, हमें ही भटक भी जाना था।

निचोड़नी थी ऐकक पल से ज़िन्दगी भी और
ऐकक पल को तरो-ताज़ा छोड़ जाना था।

किसी-किसी प' तो कुल अर्थ आग होने का
धुएं सा उठके एकेक शै प' छाये जाना था

दोहे

कैसी यह असमानता, कैसा है यह भेद।
वेद न आँखों से लखे, फिर भी चातुर्वेद।।

चोरी यहा पर हो रही, जहा पुलिस का थान।
हर नृप से होने लगी, अब हमही को हान।।

सत सीकरी को चले, कर में सेगा थाम।
जगह एक ही बंध गए, घट घटवाले राम।।

कैसी यह आराधना, कैसा धर्म विचित्र।
मनुज मात्र स्पर्श से, होते देव अपवित्र।।

सिंहों के लॅंहड़े यहा, हसों की हुई पाँति।
साधू भी हैं पूछते, तू कौन सी जाति।।

माणिक या ससार में बदनामों का नाम।
आम आदमी को हुआ, दुर्लभ यहा पर आम।।

मुनव्वर राना

ग़ज़ल

इनसे मिलिए जो यहां फेरबदल वाले हैं
हम से मत बोलिए हम लोग ग़ज़ल वाले हैं
लूटने वाले उसे क़त्ल न करते लेकिन
उसने पहचान लिया था कि बग़ल वाले हैं
कैसे शफ़्फ़ाक़ लिबासों में नज़र आते हैं
कौन मानेगा ये सब वही कल वाले हैं
बे कफ़न लाशों के अम्बार लगे हैं लेकिन
फ़ख़्र से कहते हैं हम ताजमहल वाले हैं
यूं भी एक फूस के छप्पर की हक़ीक़त क्या थी
अब उन्हें ख़तरा है जो लोग महल वाले हैं

रोने में एक ख़तरा है तालाब नदी हो जाते हैं
हंसना भी आसान नहीं है, लब ज़ख़्मी हो जाते हैं
स्टेशन से वापिस आ कर बूढ़ी आंखे सोच रही हैं
पत्ते देहाती रहते हैं फल शहरी हो जाते हैं
गांव के भोले भाले वासी आज तलक ये कहते हैं
हम तो न लेंगे जान किसी की राम दुखी हो जाते हैं
बोझ उठाना शौक़ कहां है, मजबूरी का सौदा है
रहते-रहते स्टेशन पर लोग कुली हो जाते हैं
अपनी अना को बेचके अक्सर लुक़माएतर की चाहत में
कैसे-कैसे सच्चे शायर दरबारी हो जाते हैं

मोहसिन ज़ैदी

ग़ज़ल

क्यूं हमसे पूछते हो कि साकिन कहां के है
हिन्दोस्तां में रहते है हिन्दुस्तां के है
इस ख़ाक से उठा है हमारा ख़मीर भी
तुम हो अगर यहां के तो हम भी यहां के है
मीरासे मुश्तरिक के तो हम भी है हिस्सेदार
चश्मोचराग़ हम भी इसी ख़ान्दां के है
इतने तकल्लुफ़ात से पेश आइए न हम
हम अपने घर में आए है मेहमां कहां के है
अपनी सदाए दिल पे बढ़ाएंगे हम कदम
पाबंद क्या किसी जरसे कारवां के है
बाकी अभी तो ओर है औराके ज़िन्दगी
तुमने पढ़े जो हैं वो वरक दरम्यां के है
हमतो गुबारे दश्त है, हमको किसी से क्या
हम कोई काफ़िले, न किसी कारवां के है
तुमने भी कौन सा नया अफ़साना लिख दिया
सारे ही वाक़यात मेरी दास्तां के है
सच बोलकर ज़बान कलम भी हुई तो क्या
चर्चे तो हर ज़बान पर मेरी ज़बां के है
'मोहसिन' झुका रहेगा इसी आस्तां पे सर
सज्दा गुज़ार हमतो इसी आस्तां के है

यह लड़ाई का समय नहीं

यह लड़ाई का समय नहीं
एक दूसरे के साथ मिलकर समस्याओं पर
विचार करने का समय है
बिना किसी वहम के
अपनी पृथ्वी को सुन्दर बनाने के रास्ते पर
साथ-साथ कदम मिलाकर चलने का समय है
क्योंकि पृथ्वी पर सड़ाघ काफी दूर-दूर तक
फैल चुकी है

यह लड़ाई का समय नहीं
अपनी-अपनी जरूरतों को कम करने का समय है
इस वर्तमान ख़राब समय के जिम्मेदार कारणों
पर नज़र डालने का समय है
और सारे के सारे हथियार धर देने का समय है
जब तक हम किसी ठोस निर्णय पर पहुँच न जायें
यह लड़ाई का समय नहीं
अपनी-अपनी ग़लतियों के बारे में सोचने
का समय है

रमेश ऋतंभर

इसके पहले

इसके पहले
नहीं दरका था विश्वास आदमी का इस तरह
हमारी दुनिया में
इसके पहले
नहीं उड़ा था मखौल प्रेम का इस तरह
हमारी दुनिया में
इसके पहले
नहीं हुए थे लोग इतने क्रूर
हमारी दुनिया में
इसके पहले
नहीं दिखे थे शब्द इतने लाचार
हमारी दुनिया में
इसके पहले
सचमुच इसके पहले।

यह लड़ाई का समय नहीं

यह लड़ाई का समय नहीं
एक दूसरे के साथ मिलकर समस्याओं पर
विचार करने का समय है
बिना किसी वहम के
अपनी पृथ्वी को सुन्दर बनाने के रास्ते पर
साथ-साथ क़दम मिलाकर चलने का समय है
क्योंकि पृथ्वी पर सड़ाँध काफ़ी दूर-दूर तक
फैल चुकी है

यह लड़ाई का समय नहीं
अपनी-अपनी ज़रूरतों को कम करने का समय है
इस वर्तमान ख़राब समय के ज़िम्मेदार कारणों
पर नज़र डालने का समय है
और सारे के सारे हथियार धर देने का समय है
जब तक हम किसी ठोस निर्णय पर पहुँच न जायें
यह लड़ाई का समय नहीं
अपनी-अपनी ग़लतियों के बारे में सोचने
का समय है

ख़ामोशी

न होगी दुनिया
न होगा प्रेम
न होगी माँ
न होगी सृष्टि
न होंगे शब्द
न होंगी कविताएं
होगा सिर्फ़ प्रलय
होंगी सिर्फ़ चीखें
होगा सिर्फ़ विनाश
होगी सिर्फ़ ख़ामोशी
न प्रेम
न शब्द
न कविता
सिर्फ़ ख़ामोशी
ख़ामोशी
एक लम्बी ख़ामोशी।

राजकुमार सोनी

जुलूसः एक

जुलूस जब चलता है
मौजूद होते है
सारे हथियार
तेज हथियार
मजबूत हथियार
खतरनाक हथियार
जुलूस में
सबसे खतरनाक
होता है इरादा

जुलूसः दो

कुछ दिनों पहले
जुलूस के आगे था
कुछ दिनों बाद
जुलूस के पीछे था
दोनों ही मर्तबा
मालूम नहीं हुआ
किसलिए
जुलूस में था।

आदमियत

सड़क। सायकिल। टिफिन
घड़ी।बस। रेलगाड़ी
और थी–
ढेर सारी चीजें
जब जल चुकी होती है

तब–
आदमियत आती है
अपने खोल से बाहर

अब वह
सुलगती चीजों से
खौफ खाती है
और पाती है जहाँ सर छुपाने की जगह
छुप जाती है।

एक प्रार्थना

शहर
फट पड़ा बम के धमाकों से

बाजूवाला शहर फटा
फिर. . . बाजूवाला!

प्रार्थना–
"ईश्वर
मुझे तुम्हारा नहीं
बाजूवाले का साथ चाहिए।"

राजेंद्र कुमार

स्वधर्मे निधनं श्रेयः

अब कागज की जिद देखिये
बार-बार पूछे जा रहा था कि उसका धर्म क्या है?

मैंने चाहा, उसे चुपकर दू अपने इस जवाब से
कि तुम्हारा
कोई एक निश्चित धर्म नहीं है
तुम्हारा धर्म बताने के लिए
तुम पर लिखे गए ग्रंथ का नाम देखना होगा मुझे

तुम पर लिखे गए ग्रंथ का नाम
श्रीमद्भगवद्गीता हो तो तुम हिंदू हो
गुरु ग्रंथ साहब हो तो तुम सिख हो
कुर्आन शरीफ़ हो तो तुम मुसलमान हो
होली बाइबिल हो तो तुम ईसाई हो

मगर मैं संतुष्ट नहीं कर सका कागज को
अपने इस जवाब से

मैंने हार मान ली
कागज जिद करता रहा
मैं निढाल होकर लुढ़क गया
तभी 'पट' से कुछ गिरा
मैंने देखा एक चिट्ठी थी
डाकिया खिड़की से फेंककर आगे बढ़ गया था

मैं उस चिट्ठी को हाथ में लेते ही
सब कुछ भूल गया
वो चिट्ठी मेरे नाम थी
मेरे एक बहुत ही प्यारे दोस्त की चिट्ठी

उसने अपना दिल
उडेल कर रख दिया था उसपर
कागज, जो ज़िद कर रहा था, पुलक उठा–
यही है मेरा धर्म
यही है मेरा धर्म–चिट्ठी होना. . . .
इंसान के द्वारा अपना दिल उंडेलकर
इंसान के नाम लिखी गई चिट्ठी होना . . .
तब कोई परवाह न भी करे
मुझे युगों-युगों तक सुरक्षित रखने की
गीता कुर्आन गुरूग्रंथ बाइबिल की तरह,
तब मैं नष्ट भी हो जाऊं
तो कुछ हर्ज नहीं

रोटी

मेरा धर्म है भूख।
मैं ऐसे हर इंसान को काफ़िर समझती हूं
जो बिना भूख के मुझे ग्रहण करता है।

मैं नास्तिक हूं।
अलौकिकता में मेरी कोई आस्था नहीं है।
मैं पोई गई ठेठ पार्थिव हाथों से।
पृथ्वी पर हूं।
पृथ्वी की हूं।
नहीं तो मेरा आकार भी
भला क्यों होता पृथ्वी जैसा।

राजेश्वरी प्रसाद द्विवेदी

हम अपने इतिहास को मिट्टी में मिला रहे हैं

यह कैसी परम्परा है जिसमें
लूट के विरूद्ध एक भी शब्द नहीं है
यह कैसा धर्म है जिसमें
आदमी के लिए कोई जगह नहीं है
असहमति को कौन कहे
सहमति की गुंजाइश नहीं है

यह कैसी नैतिकता है जिसमें
आदमी पर एकतरफ़ा हमला किया जाता है
बच्चों-बूढ़ों को जिंदा जला दिया जाता है

यह कैस शील है जिसमें
औरतों को नगा किया जाता है
बलात्कार के बाद मार दिया जाता है

ये कैसे लोग हैं जो अपने सिवा
पूरी दुनिया को हिकारत से देखते हैं
अपने विरूद्ध छींक भी बर्दाश्त नहीं करते है
यह कैसी सहनशीलता है
और हम भी कैसे लोग हैं जो
अपने इतिहास को मिट्टी में मिला रहे हैं
अपनी ताकत आँत में छुपाए
इनके लिए पीठ बिछाए जा रहे हैं

रामकुमार कृषक

हे राम !

तुम्हारे नाम की हो रही है लूट
हे राम!
तुम्हारे नाम को जप रहा है झूठ
हे राम!
तुम्हारे नाम से भर रहे हैं कुछ पेट
हे राम!
तुम्हारे नाम पर ठग रहे हैं सेठ
हे राम!
तुम्हारे नाम पर सजे हैं बाजार
हे राम!
तुम्हारे नाम पर जमा है व्यापार
हे राम!
तुम्हारे नाम पर डाकू भी संत हुए
हे राम!
तुम्हारे नाम की महिमा अनन्त है
हे राम!

किमाश्चर्यम् ?

वे. . .
चाहते हैं राष्ट्र
और
पनाह माँगने लगता है—
देश।

करते हैं सत्याग्रह
और
उद्दण्ड हो उठता है—
झूठ।

कहते हैं राम
और
अहसास करने लगता है—
रावण।

जाते हैं अयोध्या
और
धू-धू कर जल उठता है—
अलीगढ़।

रामकुमार तिवारी

अन्दर ही अन्दर

आटा पिसाने गया था कि
दंगे भड़क उठे
न जाने कहाँ गिरा कनस्तर
बदहवास भागता घुसा घर में

दरवाजा लगाता, इससे पहले
जान बचाता घुसा
एक और आदमी

मुझे अन्दर के इस आदमी को
बचाना है
अरे! यह मुझ से ही डर रहा
कहाँ छिप रहा

हाँफ साधता
'तुम्हें अब डरने की जरूरत नहीं'
कहने को उठा ही था कि वह ज़ोर से
बचाओ-बचाओ चिल्लाता
दरवाजे से भागा
बाहर दंगाइयों ने उसे घेर कर मार डाला
उसे मार कर दंगाई
मेरे घर आये और पानी पिया
मेरे सारे घड़े खाली हो गये

मेरे ही अन्दर थे (भोपाल में दंगों के समय)

इतना तेज़ गुज़रा स्कूटर, बग़ल से कि
इससे पहले नहीं गुज़रा था
कभी कोई वाहन

पहले कभी नहीं देखे थे
इतने ग़ौर से चेहरे

अन्दर ही अन्दर
नहीं काँपा था कभी, इतना

अपने ही पैरों की आहट पर चौंकता
इस तरह नहीं भागा था कभी

यह सब 'भय' मेरे ही अन्दर थे
ऐ शहर
यह तेरी मेहरबानी
जो तूने उन्हें सामने ला दिया

रामकुमार सिंह तंवर

मुक्तनाद

सांस्कृतिक लहरों की हिलोर से भरा उन्माद।
सहमत ने बजाया जब अयोध्या में मुक्तनाद।।
शत् कलाकृतियाँ थिरक उठीं मध्य रात्रिकाल
विभिन्न प्रतिमाओं का सागर सा समूह विशाल
अयोध्या हृदय जाग गया देख अनेक प्रस्तुति जाल
लालायित समागम सम्मुख झुका साम्प्रदायिक भाल
अनेक में एक बिन्दु उभर गया था आह्लाद।
सहमत ने बजाया जब अयोध्या में मुक्तनाद।।
सृजनात्मक शैली में प्राचीन कला अभिव्यक्ति
तबला, मृदगम्, गायन व कथक-नृत्य प्रस्तुति
नाट्यमंच व कलाकारों की जीवन्त कला स्तुति
नील गगन की छत्र छाया में विचित्र कला विभूति
निर्भय कलाकर्मियों ने किया अनूठा सिंहनाद।
सहमत ने बजाया आज राष्ट्र में मुक्तनाद।।
साम्प्रदायिक हलाहल पीया शिव बन कर
धर्म-निरपेक्ष संस्कृति प्रस्तुत की सचय कर
कोटि जन में एकता सन्देश दिया निश्चय कर
मानस-पटल पर छा गया ज्ञान-चक्षु उदय कर
दुर्लभ अलंकृत प्रमाणों का था नहीं अपवाद।
सहमत ने बजाया आज राष्ट्र में मुक्तनाद।।
कंब-महाकाव्य, पमा रामायण, दशरथ जातक ग्रन्थ
राम-कथा को दर्शाते थे कैसे विभिन्न पन्थ
ये काव्यात्मक चरित्र-चित्रण के सटीक तथ्य पेश
पर दस पौंगा-पंथियों ने ठाया अशोभन विद्वेष
कुंठित मनोवृत्ति बल पर 'संघ' ने छेड़ा है विषाद।
आशान्वित 'तंवर' सहमत अन्ततः होगा निःशंक पाद।।

मैंने कब कहा था ?

मैंने कब कहा था कि
तुम मुझे पत्थर में बदल कर कहीं गाड़ देना
और गाड़ने से पहले उसे हथियार की तरह माँजना
और लहू-लुहान कर देना
आसपास की गलियों को, सड़कों को

गलियाँ और सड़कें तो सूख जायेंगी
लेकिन तुम नहीं देख पाओगे कि
मेरे भीतर जो ख़ून के धब्बे लगे हैं
वे हरे के हरे हैं
और लाशों के हट जाने पर भी
उनकी दुर्गंध मुझे दिन रात बेचैन किये हुए है

तुम्हें यह भी पता नहीं
कि जिसका ख़ून बहा है
वह भी मैं ही हूं
जिसने बहाया है, वह भी मैं ही हूं
तुमसे मैंने कब कहा था कि
मुझे अपने से अपने को मारने की
निरंतर यातना की सज़ा में उतार दो

सदियों से मुझे जानने का दम भरते हो
लेकिन नहीं जान पाये कि
मैं किसी मंदिर मस्जिद या गिरजाघर में
किसी गाँव, कस्बे या शहर में
नहीं उँटता हू
मैं 'वह' और 'तुम' के खानों में
मैं नहीं बैठता हू
मेरे नाम को हवा में उछालते हुए तुम
व्यर्थ ही दर-दर न जाने कहाँ कहाँ जाओगे
अरे दीवानों,
तुम मौन भाषा में धीरे से मुझे पुकार लो
जहाँ कहीं रहोगे अपने पास पाओगे।

राही मासूम रज़ा

लेकिन मेरा लावारिस दिल

मस्जिद तो अल्लाह की ठहरी,
मंदिर राम का निकला
लेकिन मेरा लावारिस दिल
अब जिसकी झोली में
कोई ख़्वाब,
कोई ताबीर नहीं है
मुस्तकबिल की रौशन-रौशन
एक भी अब तस्वीर नहीं है।

टूटे आईनों का जगल
पुर्जा-पुर्जा, प्यासे बादल
शर्मिन्दा ताबीरों का यह शहरे-ख़मोशी
बोल ए इनसा, बोल ए इनसा
यह दिल, यह मेरा दिल, यह लावारिस,
यह शर्मिन्दा-शर्मिन्दा दिल
आख़िर किसके नाम का निकला।

मस्जिद तो अल्लाह की ठहरी
मंदिर राम का निकला
बदा किसके काम का निकला।

यह मेरा दिल है या मेरे ही ख़्वाबों का मकतल
चार तरफ बस ख़ून और आँसू
चीख़ें, शोले, घायल गुड़ियाँ
खुली हुई मुर्दा आँखों से कुछ दरवाजे

ख़ून में लिथड़े कमसिन कुर्ते
एक पाँव की जख़्मी चप्पल
जगह-जगह से मसकी साड़ी
शर्मिन्दा नंगी श्लवारें

दीवारों से चिपकी बिन्दी
सहमी चूड़ी
दरवाज़ों की ओट में
आवेज़ों की कब्रें
ऐ अल्लाह, रहीम, करीम
ये तेरी अमानत
ऐ श्री राम, रघुपति राघव, ऐ मर्यादा पुरुषोत्तम
ये आपकी दौलत, आप सँभालें
मैं बेबस हूँ आग और ख़ून के इस दलदल में
मेरी तो आवाज़ के पाँव धँसे जाते हैं।

विजय शंकर चतुर्वेदी

अयोध्या नहीं, हम जा रहे थे दफ़्तर

हमने नहीं ढहाई कोई मसजिद
मंदिर भी नहीं तोड़ा हमने
हम तो कर रहे थे तैयार
बच्चों को स्कूल के लिए
स्त्रियां फींच रहीं थीं कपड़े
धो रही थीं चावल
भात बनाने के लिए
कुछ भर रही थीं स्टोव में हवा।

हमें नहीं चला पता
किधर से उठा शोर
किस दीवार से टकराई गोली
कहा से आ गिरा कबूतर
हमारी चौखट पर

हम बाँध रहे थे जूतों के फीते
सुन रहे थे
भाजी बेचनेवालों की चिल्लाहट
हमारे हाथों में फावड़े नहीं
थैले थे लाने को सब्जियाँ
घर लौटते

अयोध्या नहीं
हम जा रहे थे दफ्तर
हम नहीं जानते थे खोदना घर
हमने नहीं ढहाई कोई मसजिद
नहीं तोड़ा कोई मंदिर
जो टूटे
वे थे हमारे ही मकान

विभांशु दिव्याल

ग़ज़ल

इन जुनूनी आँधियों का दर्प चटकेगा ज़रूर
दोस्त यूं मायूस मत हो वक़्त बदलेगा ज़रूर

धमक पहियों की सुनी तो तू किनारे हो गया
उधर चट्टानें खड़ी हैं रथ ये टूटेगा ज़रूर

चन्द बादल रोशनी की राह आकर अड़ गये
पर इन्हीं पगडंडियों पर सूर्य उतरेगा ज़रूर

आज डर है लोग चुप हैं और सन्नाटा यहाँ
कल किसी के कंठ से कुछ शोर उभरेगा ज़रूर

दंडवत झुक जायेगा यह भ्रम कभी मत पालना
चांपने गर्दन यही लाचार उछलेगा ज़रूर

गलियों में दुबके चेहरे हमारे थे
हम हिंदू थे
हमीं थे मुसलमान

दगाई नहीं थे हम
न ही थे नेता
कि हो गिरफ्तार रहते सुरक्षित
हमारा धर्म नहीं था अमरबेल
उसकी जड़ें थीं
खूब गहरी धरती के भीतर
हम सड़क थे
सन्नाटा भी थे हम
हम नहीं थे असुरक्षित खुले में

हमारे बच्चे निकल आते थे
खेलने गलियों के बाहर
हममें से
लौटेंगे नहीं अब कुछ लोग
उनकी परछाइयाँ भी नहीं बनेंगी
सूरज चाँद के सामने
उन्होंने नहीं ढहाई थी कोई मसजिद
नहीं तोड़ा था कोई मंदिर

विभांशु दिव्याल

ग़ज़ल

इन जुनूनी आंधियों का दर्प चटकेगा ज़रूर
दोस्त यूं मायूस मत हो वक़्त बदलेगा ज़रूर

धमक पहियों की सुनी तो तू किनारे हो गया
उधर चट्टानें खड़ी हैं रथ ये टूटेगा ज़रूर

चन्द बादल रोशनी की राह आकर अड़ गये
पर इन्हीं पगडंडियों पर सूर्य उतरेगा ज़रूर

आज डर है लोग चुप हैं और सन्नाटा यहाँ
कल किसी के कंठ से कुछ शोर उभरेगा ज़रूर

दंडवत झुक जायेगा यह भ्रम कभी मत पालना
घापने गर्दन यही लाचार उछलेगा ज़रूर

ग़ज़ल

आदमी की मौत पर जो रो नही सकती
आख मज़हब की कभी वह हो नहीं सकती

घर पडोसी का जलाकर मुस्कराएँ लोग
सभ्यता की यह निशानी हो नही सकती

चीख़ सुन मासूम की जागा न ये शहर
इस शहर की बदनसीबी सो नहीं सकती

आँख उसका मूँदना वक्त कत्ले आम के
दाग दामन के कभी वह धो नहीं सकती

आदमी का हक़ रहा जिस कौम का मकसद
आबरू वह कौम अपनी खो नही सकती।

ग़ज़ल

मौत की अंधी हवा को अब कहीं तो रोकिए
रोकिए नफ़रत की यह आँधी यहीं पर रोकिए

वह शख़्स हाथों में लिये है आज भी नंगी छुरी
क़त्ल हो पाये न अब इंसान, बढ़कर रोकिए

है यहां मंदिर, वहाँ मस्जिद, वहाँ पर क़त्लगाह
फ़र्क़ मिटने की तरफ़ रफ़्तार, रूककर रोकिए

आह औरत की न फूटे और बच्चे की न चीख़
इस कराहों की कहानी को कहीं पर रोकिए

यह ज़मीं का ही लहू है इस तरह बहने न दें
आसमाँ सुनता नहीं इसको ज़मीं पर रोकिए

शमशेर बहादुर सिंह

ग़ज़ल

राह तो एक थी हम दोनों की
आप किधर से आए-गए!
—हम जो लुट गए पिट गए, आप जो
राजभवन में पाए गए!

किस लीलायुग में आ पहुँचे
अपनी सदी के अंत में हम
नेता, जैसे घास-फूस के
रावन खड़े कराए गए।

जितना ही लाउडस्पीकर चीख़ा
उतना ही ईश्वर दूर हुआ
(—अल्ला-ईश्वर दूर हुए!)
उतने ही दंगे फैले, जितने
'दीन-धरम' फैलाए गए।

मूर्ति-चोर मंदिर में बैठा
औ' गाहक अमरीका में!
दान-दच्छिना लाखों डॉलर
गुप्त दान करवाए गए!

दादा की गोद में पोता बैठा,
'महबूबा! महबूबा. . ' गाए।
दादी बैठी मूड़ हिलाए . .
'हम किस जुग में आए गए'
गीत ग़ज़ल है फ़िल्मी लय में
शुद्ध गलेबाज़ी, शमशेर
आज कहाँ वो गीत जो कल थे
गलियों-गलियों गाए गए!

ग़ज़ल

उलट गए सारे पैमाने, कासागरी क्यों बाक़ी है।
देस के देस उजाड़ हुए, दिल की नगरी क्यों बाक़ी है।

कौन है अपना कौन पराया, छोड़ो भी इन बातों को
इक हम तुम हैं ग़ैर से अपनी, पर्दादरी क्यों बाक़ी है।

शायद भूले-भटके किसी को, रात हमारी याद आई
सपने में जब आन मिले फिर, बेख़बरी क्यों बाक़ी है।

किसका साँस है मेरे अन्दरः इतने पास औ' इतनी दूर
इस नज़दीकी में दूरी की, हमसफ़री क्यों बाक़ी है।

सचमुच मुझको ऐसा लगा, जैसे तुम बिल्कुल पास ही हो
साँस में अब तक वही सुनहरी, दोपहरी क्यों बाक़ी है।

बीत गए युग फिर भी जैसे, कल ही तुमको देखा हो
दिल में औ' आँखों में तुम्हारी, ख़ुशनज़री क्यों बाक़ी है।

शोर भजन औ' कीर्तन का है, या फ़िल्मी धुनों का हगामा
नर पे हि लाउडस्पीकर की, टेढ़ी छतरी क्यों बाक़ी है।

कैसा सियासत का तूफ़ान, कि आग की लपटों में इन्सान
अपनों पर अपनों की ही, बेदादगरी क्यों बाक़ी है।

धर्म तिजारत पेशा था, जो वही हमें ले डूबा है
बीच भँवर के सौदे में यह, इक खंजरी क्यों बाक़ी है।

शमशेर बहादुर सिंह

ग़ज़ल

राह तो एक थी हम दोनों की
आप किधर से आए-गए!
—हम जो लुट गए पिट गए, आप जो
राजभवन में पाए गए!

किस लीलायुग में आ पहुँचे
अपनी सदी के अंत में हम
नेता, जैसे घास-फूँस के
रावन खड़े कराए गए।

जितना ही लाउडस्पीकर चीखा
उतना ही ईश्वर दूर हुआ
(—अल्ला-ईश्वर दूर हुए!)
उतने ही दंगे फैले, जितने
'दीन-धरम' फैलाए गए।

मूर्ति-चोर मंदिर में बैठा
औ' गाहक अमरीका में!
दान-दच्छिना लाखों डॉलर
गुप्त दान करवाए गए!

दादा की गोद में पोता बैठा,
'महबूबा! महबूबा. . .' गाए।
दादी बैठी मूड़ हिलाए. . .
'हम किस जुग में आए गए'
गीत ग़ज़ल है फिल्मी लय में
शुद्ध गलेबाज़ी, शमशेर
आज कहाँ वो गीत जो कल थे
गलियों-गलियों गाए गए!

अपनी ज़बान

ग़ज़ल

उलट गए सारे पैमाने, कासागरी क्यों बाक़ी है।
देस के देस उजाड़ हुए, दिल की नगरी क्यों बाक़ी है।

कौन है अपना कौन पराया, छोड़ो भी इन बातों को
इक हम तुम हैं ख़ैर से अपनी, पर्दादरी क्यों बाक़ी है।

शायद भूले-भटके किसी को, रात हमारी याद आई
सपने में जब आन मिले फिर, बेख़बरी क्यों बाक़ी है।

किसका साँस है मेरे अंदरः इतने पास औ' इतनी दूर
इस नज़दीकी में दूरी की, हमसफ़री क्यों बाक़ी है।

सचमुच मुझको ऐसा लगा, जैसे तुम बिल्कुल पास ही हो
साँस में अब तक वही सुनहरी, दोपहरी क्यों बाक़ी है।

बीत गए युग फिर भी जैसे, कल ही तुमको देखा हो
दिल में औ' आँखों में तुम्हारी, ख़ुशनज़री क्यों बाक़ी है।

शोर भजन औ' कीर्तन का है, या फ़िल्मी धुनों का हंगामा
सर पे हि लाउडस्पीकर की, टेढ़ी छतरी क्यों बाक़ी है।

कैसा सियासत का तूफ़ान, कि आग की लपटों में इन्सान
अपनों पर अपनों की ही, बेदादगरी क्यों बाक़ी है।

धर्म तिजारत पेशा था, जो वही हमें ले डूबा है
बीच भँवर के सौदे में यह, इक ख़ंजरी क्यों बाक़ी है।

शिवशंकर मिश्र

ग़ज़ल

हो गए हम क़त्ल या फिर बच गए इस बार हम
देखते हैं रोज़ उठकर सुब्ह का अख़बार हम

हमारी हथेलियाँ हैं, हाथों मरे हमें,
भूलते-से जा रहे अपने सभी अधिकार हम।

खेल उनका, घोड़े हम पर, उनकी बाज़ी, जीतकर,
रेस की घोड़ी नहीं बनने को अब तैयार हम।

दर्द बढ़ते हैं, पहुँचे मर्म तक पीड़ा कभी,
गाने लग जाते, तभी लिखते हैं दिन के पार हम।

ग़ज़ल

कैसे हालात हैं, कैसी हालत है,
ज़िंदगी हादसों की अमानत है।

ख़ौफ़ में कुछ हवा ऐसे काँटा हुई,
सांस लेना है दुश्वार, आफ़त है।

चल गयीं वक़्त की ऐसी बदमाशियाँ,
ख़ुदकुशी पर आमादा शराफ़त है।

आज दुनिया ही इतनी बदल-सी गयी,
या गयी, उम्र की यह हरारत है।

झूठ के लफ़्ज़, हिज्जे, ज़बानें कई,
एक हर दिल में सच की इबारत है।

प्यार को तरसें इतने जो 'मिश्रा' यहाँ
प्यार उनको करो तो इबादत है।

ग़ज़ल

गहरे ही गहरे कुछ ऐसे उतर जाते हैं,
पेटों के पार हर छुरे नजर आते हैं।

देखसहता हर गर्दन, झूलती हुई बाँहें,
इस तरह सैकड़ों ही लोग गुजर जाते हैं।

जानते हैं हम उन्हें, वे लोग कैसे हैं सभी।
घर बुलाकर मारते हैं और मुकर जाते हैं.

बातों की बात नहीं, बातें कुछ ऐसी हैं,
कसमें भी मरे हुओं की छूकर खाते हैं।

ज़िंदगी की ओर लड़ा जीत गया 'मिश्रा' पे,
मरनेवाले तो अपनी मौत मर जाते हैं।

शिवेश

ग़ज़ल

चारों तरफ़ हवा में जहर देख रहा हू
मैं देश में दगों का शहर देख रहा हू।

ख़ंजर छिपाये लोग इबादत हैं कर रहे
मैं दूर से क़ातिल की नजर देख रहा हूँ।

वे कांच-घर में बैठकर साजिश में मुब्तिला
मैं बिछ रहे पत्थर की डगर देख रहा हू।

वे दोस्ती का हाथ लिये बढ़ रहे मगर
मैं दिल में छिपी उनकी कसर देख रहा हू।

वे उनकी निगाहों में ईसा-मसीह हैं
मैं जुल्म सितम ढाये कहर देख रहा हू

वे मुह से कह रहे हैं राम, कृष्ण, 'शिव', रहीम
मैं खून से लबरेज अधर देख रहा हू

उठाओ कलम

उठाओ कलम, सर कलम हो रहे हैं
धुआधार जुल्मों-सितम हो रहे हैं

लिखो राष्ट्र-समता की आँखें भरी क्यों
कलुष की कथा, कत्ल-गारतगरी क्यों
मजहबी दरिंदों को हथियार देकर
गुनहगार पूँजी की बाजीगरी क्यों।

समय खो न जाये, गला भर न आये
जगाओ जो दिन में पड़े सो रहे हैं
उठाओ कलम, सर कलम हो रहे हैं
धुआधार जुल्मों-सितम हो रहे हैं।

जरा देखिये इनके आधार क्या हैं
मुजरिम सियासत के व्यापार क्या हैं
बदलती है धरती से धन की प्रणाली
हमारे तुम्हारे सरोकार क्या हैं

बोते हैं हम-तुम फसल जिन्दगी की
ये रोटी के दुश्मन धरम बो रहे हैं
उठाओ कलम, सर कलम हो रहे हैं
धुआधार जुल्मों-सितम हो रहे हैं

कलम के लिए देस-परदेस क्या है
कलम का हमेशा से सन्देश क्या है
गिरों को उठाओ, जमाने को बदलो
अदब की हकीकत, पशोपेश क्या है

कलम के लिए भ्रम की जँजीर तोड़ो
जमाने के अक्षर गरम हो रहे हैं
उठाओ कलम, सर कलम हो रहे हैं
धुआधार जुल्मों-सितम हो रहे हैं।

30 अक्टूबर 1990

काला दिन है काली रात
आम आदमी के विवेक पर
कुछ धर्मान्ध लगाये घात
काला दिन है, काली रात।

कंटक बनी 30 अक्टूबर
घसा देश संकट के भीतर
चढ़ा रहे हिन्दू जनता पर
पागलपन का नशा भयकर।

वोट बैंक के लिए राम की
जन्मभूमि की बिछा बिसात
काला दिन है, काली रात।

आम आदमी के विवेक पर
कुछ धर्मान्ध लगाये घात
काला दिन है, काली रात।

धनी निर्धनों से शंकाकुल
जनजागृति के भय से व्याकुल
वर्णाश्रमी सघ के माते
रामनाम का लेकर सबल।

तुलसी की मर्याद राम पर
करते कुटिल कुठाराघात
काला दिन है, काली रात।

आम आदमी के विवेक पर
कुछ धर्मान्ध लगाये घात
काला दिन है, काली रात।

शुजा ख़ावर

मन्दिर मस्जिद के बाहर आके जब मिलता है वो
रहते हैं शीरो शकर हम काफ़िर और मोमिन दोनों

मेरे वजूद से कम तेरी जान थोड़ी है
फ़साद तेरे मेरे दरम्यान थोड़ी है

ये किसने मुझ पे जंग का ऐलान कर दिया
अच्छे भले बशर को मुसलमान कर दिया

कोई खतरा नहीं

कुछ लोगों के लिए
पुरानी इमारतों को गिरते देखना
एक शग्ल हो सकता है
जैसा कि ताश खेलना
या फिर शिकार पर जाना।

इसके लिए किसी पेड़ पर
मचान बांधना जरूरी नहीं,
आप उचित दूरी पर बने
किसी भी पुराने मकान की छत पर
बैठ सकते हैं
साथ में एक थर्मस चाय
और एक दूरबीन हो तो और भी अच्छा।

आप देख सकते हैं
कैसे एक क्रुद्ध और धर्मांध भीड़ का उन्माद
एक सैलाब बन कर
पल भर में चारों ओर फैल जाता है
और सदियों पुराना इतिहास
आपकी आंखों के आगे
ढेर हो जाता है।

आप देख सकते हैं
मूक और बधिर अधिकारी और नेता
हाथ पर हाथ धरे
संविधान की किसी धारा के पीछे
अपनी नपुंसकता छिपाए
और आप स्वयं भी बांध सकते हैं
अपनी आखों पर पट्टी

ताकि गली के मोड़ पर गिरी
लाशें आप को दिखाई न दें।

गिरती हुई लाशें देखना
अच्छा नहीं आप जैसे संभ्रात व्यक्ति के लिए,
आपको मतली आ सकती है
और अगर दिल कमज़ोर हो तो
दौरा भी पड़ सकता है।

क्योंकि आपमें साहस नहीं
इस उन्माद को रोकने का,
इसलिए बेहतर है
आप अपने कमरे में बन्द
बी.बी.सी. पर देखते रहें
इमारतों और लाशों का गिरना

इसमें कोई खतरा नहीं।

सग़ीर अहसनी

फ़िरक़ापरस्ती

गुलामी से बढ़कर है फ़िरक़ापरस्ती
गवारा है आजाद हो कर ये पस्ती?
मिटाएंगे कब तक यूंही अपनी हस्ती
खुदारा ये जिल्लत ये लानत मिटा दो
तअस्सुब को छोड़ो मुहब्बत सिखा दो
जिन्होंने सिखाई ये फ़िरक़ापरस्ती
गए हैं तुम्हें देके वो दरसे-पस्ती
फँसाओ न गरदाब में अपनी कश्ती
उठो मिल के नफ़रत के शोले बुझा दो
दिलों को अखुव्वत के गुन्चे बना दो
ये फ़िरक़ापरस्ती सरासर बला है
क़दम इसका जिस मुल्क में जम गया है
तबाही वहा का मुक़द्दर बना है
तअस्सुब न छोड़ा जो आजाद हो कर
रहोगे तुम इक रोज बरबाद हो कर
तअस्सुब है तूफ़ां मुहब्बत सफ़ीना
रवादारियां हैं तरक़्क़ी का जीना
मिला कर रहो आज सीने से सीना
खुलूसो मुहब्बत के चश्मे बहा दो
ये फ़िरक़ापरस्ती तअस्सुब मिटा दो
कन्हैया की बंसी में जादू भरा था
वो जादू था उल्फ़त का उपदेश गोया
यही नग़मा नानक ने हमको सुनाया
यही राग गाकर फ़िज़ा को गुँजा दो
मुहब्बत की दुनियाँ दिलों में बसा दो
गलत है ये शेख़ो ब्रह्मन का झगडा
नहीं कोई मजहब तअस्सुब सिखाता
न फ़िरक़ा परस्ती है शेवा किसी का
जफ़ाओं का बदला वफ़ाओं से देना

रसूले खुदा ने अमल से सिखाया
वो बापू हमारा अहिंसा का हामी
उतरवा दिए जिसने तौके गुलामी
जवाहर था अमनो अमा का पयामी
मुहब्बत का आदर्श सबको सिखा दो
उजाडो न भारत गुलिस्ता बना दो
सियासत में देरो हरम को न लाए
तशद्दुद के शोले भडकने न पाएं
वफाओ में ढल जाए सारी जफाए
जो पुरअमन माहौल जनता बना ले
हुकूमत मईशत की राहें निकालें

सत्येश

कविता
मैं और मेरी दाढ़ी

इधर मैं
मुसलमान-सा लगने लगा हूँ
मेरी दाढ़ी बढ़ी है खूब
बहुत दिन हुए
छोड़ दिया है काटना
यही तो बची है एक शेष
मेरी फसल
बेरोजगारी के ऊबड़-खाबड़ खेत में
बेतरतीब ही सही
लहलहा उठी है खूब
पक गए हैं
दो चार बाल भी
जहाँ-तहाँ

हाँ तो मैं
मुसलमान-सा लगने लगा हूँ
तभी तो उसने कहा
यह कराची का हलवा है
जब पूछा था मैंने
यह कौन-सी मिठाई है भाई
अरे, पाठक जी आप!
मैं मुड़ा और
बहुत पुराने दोस्त से
बतियाने में मशगूल हो गया

ग्राहक हाथ से निकलते देख
मिठाई वाले ने कहा

राव पाठक जी
क्या दे दूँ एकाध पीस हलवा
इसे काशी का हलवा भी कहते हैं
मैं चकित उसे देखने लगा
पूछा–
यह कराची का है या काशी का?

पता है उसने क्या कहा?
यकीन मानिए
आप यकीन नहीं करेंगे
उसने कहा था–
छोड़िये भी
मान लें इसे
धर्म-निरपेक्षता का हलवा
कहिए तो
पैक कर दूँ?
और मैं
कबीर की लुकाठी लिए
बनारस के बाजार में
खड़ा रहा
न मुसलमान निकला
न हिन्दू
मेरी दाढ़ी
लुकाठी की लपट में
पूरी तरह घिर चुकी थी।

स्वामी सदानंद सरस्वती

राक्षस चालीसा

सपने महं शंकर दियो मो कह यह उपदेश।
राक्षस चालीसा रचहु यह मेरो आदेश।।
राक्षस लीला मैं लिखउं लै के प्रभु का नाम।
रजनीचर हैं अवतरे बोलैं "जय श्री राम"।।
शंकर के ये वचन जो निसि दिन करे बखान।
सुख संपति सो पाइहै कृपा करें भगवान।।

त्रेता राम जे निसिचर मारे।
बनि बी जे पी जनमे सारे।।
भारत कर विनास ये चाहैं।
नहिं गरीब कर साथ निबाहैं।।
एक श्लोक न एक चौपाई।
इन निसिचरन याद है भाई।
धरम करम से नहिं कछु प्रीती।
पूजा भंग करहिं यह रीति।।

कबहुं स्वर्ण मृग कबहुक साधू।
बनहिं करहिं अगनित अपराधू।
गांजा चरस पियहिं व्यभिचारी।
सुरापान धन माया भारी।।
इनहिं न रामभगत कोउ मानहु।
यह निसिचर दल सब पहचानहु।।
भारत जब पायेउ आजादी।
सूझी इनहिं सबहु बरबादी।।

सत्य अहिंसा प्रेम न भावै।
जो माने तेहि मारन धावै।।
निसिचर दल कै विविध प्रकारा।
दसमुख आवहि बारम्बारा।।

प्रथम गोडसे बनि सेइ आवा।
रामभक्त गांधी पै धावा।।
गांधी की हत्या करि दीन्ही।
सूनी गोद मातु की कीन्ही।।

पुनि "रामभक्त" बनि सेइ आवा।
"हिंदू हिंदू" शोर मचावा।।
मातृभूमि के सुत सब बांटे।
देश प्रगति महं बोये कांटे।।
सोमनाथ करि हकार पूजा।
चहेउ करै विभाजन दूजा।।

गांधी मारि मारि हनुमाना।
चहैं मेटन देश निशाना।।

ये रावन के अनुचर भाई।
ये नहिं जानहिं पीर पराई।।
इनहिं न वैष्णव जन कोउ मानहु।
जानहु सत्य इनहिं पहचानहु।।
अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा।
कहहिं संत बुध गावहिं वेदा।।
मंदिर मस्जिद एक समाना।
एक सगुन इक अगुनहिं माना।।

इन महं भेद करहिं हठ मानी।
रौरव नरक परहिं सो प्रानी।।
हरि अनेक हरि कथा अनंता।
कोइ कुरान कोइ वेद कहंता।।
इन महं भेदभाव जो करिहैं।
सुत वित नासि नरक महं परिहैं।।
परहित सरिस धरम नहिं भाई।
परपीडा सम नहिं अधमाई।।

परपीड़ा महं जुटे निसाचर।
इन कर भयेउ चरित्र उजागर।।

अब ये लाख करहिं चतुराई।
इनकी बात सुनहु नहिं भाई।।
निरगुन सगुन ईश के द्रोही।
मस्जिद मंदिर ढाहैं ओही।।
संकट मोचन मंदिर तोरा।
मस्जिद तोरि देश झकझोरा।।

इनहिं न कछु रघुबर संग प्रीती।
इनकी कोउ न करहु परतीती।।
दलित दमित कर साथ न देहीं।
छल बल करहिं प्रान हरि लेहीं।।
धनिक बनिक की करहिं दलाली।
निर्धन की काया खा डाली।।
हिंसा रक्तपात मह लीना।
पाप करहिं फिरि तानहिं सीना।।

इन कर चरित सदाशिव खोला।
सोइ अमर जेहि मन नहिं डोला।।
जो यह पढ़हि राक्षस चालीसा।
तेहि पर कृपा करहिं गौरीसा।।
जो छापै जो घर घर बाटै।
तेहि कर दुख शिव शंकर काटै।।

।। सोरठा ।।

शंभु गये कैलास बोलि यही अमृत वचन।
होइ न भारत नास जो पहचानउ निसिचरन।।
।। इति राक्षस चालीसा ।।

साधना चौधरी

नन्हों के लिए

सड़क पर बिखरे
दानों को
अपने नन्हों के लिए
बीनती चिड़िया
कितनी चौकन्नी है
दूर से आती
वाहन की आवाज से
आकाश पर मंडराती चील से
घात लगाकर बैठी बिल्ली से
प्राणों का भय
और पेट की कुड़कुड़ाहट
दोनों की साफ इबारत
लिखी दिखती है
उसकी आँखों में
इन्हीं दानों को
अपनी अधखुली आश्वस्त आँखों से
माँ की चोंच से चोंच मिलाकर
चुग लेंगे नन्हे
और एक दिन
ममता के मुलायम परों से
उड़ जाएंगे
जीवन की धूप में

सुखवीर सिंह

इतिहास की बदबू

इतिहास से
लिया जा सकता है सबक
पर नहीं है सम्भव उसे दोहराना
या पूरी चेतना के साथ उसमें लौट जाना
उसमें जिया नहीं जा सकता
उसको मिटाने का साहस कभी
किया नहीं जा सकता।

एक इमारत तोड़ कर
दूसरी खड़ी कर देने भर से
नहीं बदला जा सकता इतिहास
तुम्हारा दंभ महज धोखा है
एक छलावा मात्र

कहां है वे मर्यादा-पुरूषोत्तम राम
जो नंगे पाव पैदल चलकर पहुँचे थे
निषाद/केवट/भीलनी/वन-नरों के पास
पुरूष के अभिमान से जड़ हुए नारी जीवन को
किया था जिन्होंने पुर्नजीवित
क्यों नहीं आते वे आज
इन अभिशप्तों के पास

नहीं चाहिए हमें ऐसा ईश्वर
जो तुम्हें देता हो रथ-महल-छप्पन भोग
और बाकी को देता है अभिशप्त जीवन
मौत और रोग!

(लंबी कविता का अंश)

सुरेन्द्र 'श्लेष'

ग़ज़ल

किसने क्या कर दिया शहर में गली गली सन्नाटा है
मन्दिर ने परसाद सरीखा, डर लोगों में बाटा है

उसकी कोशिश रही सदा से, मैं तुमसे बस दूर रहूँ
उसने खाई चौडी की है, मैंने उसको पाटा है

मुल्ला का भी स्वार्थ यही है, पडित का भी स्वार्थ यही
मैं तुम यदि मिल बैठे तो, बस समझो उनको घाटा है

मन्दिर मस्जिद की ईटों के झगडे बहुत दराज हुए
वह भी ऐसे वक्त, कि बन्दो को आटे का घाटा है

आज धर्म तलवार दुधारी बनकर गली-गली घूमा
बेकसूर इन्सानों को, गाजर मूली सा काटा है।

सुल्तान अहमद

ग़ज़ल

कहीं ज़लज़ले, कहीं आँधियाँ, कहीं आस्माँ पे धुआँ मिले,
जहाँ जाके दिल को सुकूँ मिले, वो नगर जहाँ में कहाँ मिले।

कहीं सायबाँ, कहीं खिड़कियाँ, कहीं दर का जिनमें पता नहीं,
कोई क्या किसी से गिला करे जो सभी को ऐसे मकाँ मिले।

इन्हें देख लो, उन्हें देख लो, यही रहबरों की है रहबरी,
तुम्हें हर सवाल पे उनसे जो वही खोखले-से बयाँ मिले।

कोई हादसा हुआ रात में कि हवा ने ज़हर उगल दिया,
जो सड़क पे आज यहाँ-वहाँ ये लहू के इतने निशाँ मिले।

हमें क्या पता, वहाँ क्या हुआ, वही हाल अपना बयाँ करें,
वो जो हादसों के शिकार थे उन्हें काश ऐसी ज़ुबाँ मिले।

*

सैयद मुहम्मद असलम

ग़ज़ल

बैठ मिल कर सोचने की है भला चिंता किसे?
दुश्मनों को ढूँढने की है भला चिंता किसे?

सो रहे हैं बेख़बर सब, धूप सिर चढ़ने लगी,
वक़्त रहते जागने की है भला चिंता किसे?

मुक्ति की बातें ही कर के, दिन बिताते हैं सभी,
बेड़ियों को काटने की है भला चिंता किसे?

सब के सब हैं पृथ्वी को बाँटने की फ़िक्र में,
इसके गम को बाँटने की है भला चिंता किसे?

झाँकते फिरते हैं औरों के घरों के आर पार,
अपने दिल में झाँकने की है भला चिंता किसे?

अयोध्या

जहाँ सूर्य वहाँ दिवस
जहाँ राम वहाँ अयोध्या

कितनी बड़ी अयोध्या
सौंप गये थे
तुलसी हमें
कितनी छोटी
रह गई है अयोध्या

मतपेटिका से भी छोटी।

हरीश भादानी

देखें, आदमी की आँख में

आँखो में घृणा
होठ पर चेंटी लहू की भूख,
हाथ में हथियार लेकर
आदमी में से निकलता है जब
आदमी जैसा ही
मगर आदिम
तभी हो जाता है
उसका नाम कातिल
जात कातिल
और उसका धर्म-सिर्फ हत्या।

वह पहले अपने आदमी को मारकर ही
मारता है दूसरे को

आदिम के हाथों
आदमी की हत्या का दाग
आदिम को नहीं
आदमी की दुनिया को लगा
फिर लगा
फिर-फिर लगा है

सोच के विज्ञान से
धनी हुए लोगो
लहू के गर्म छींटों से
इस बार भी चेहरा जला हो
गोलियों ने तरेड़ी हो
मनीषा पर पड़ी
बर्फ की चट्टान तो आओ

अपने ही भीतर पड़े
आदिम का बीज ही मारें
पुतलियों में आ बैठती
घृणा की पूतना को ही छलनी करें
भीतर के पाताल को उलीच
आँखों को बनाएँ झील
और देखें . . . देखते रहें
आदमी की आँख में
अपना ही चेहरा।

त्रिलोचन शास्त्री

मैं सगर्व सोल्लास निरन्तर उन लोगों का गुण गाता हूँ

जो अपनी धुन पर न्योछावर अपना सब कुछ कर देते हैं
जग-जीवन के लिए स्वयं को निर्भय हो बलि कर देते हैं
जिसका कदम कदम जीवन की जय-यात्रा का प्रिय प्रतीक है
मैं सगर्व सोल्लास निरन्तर उन लोगों का गुण गाता हूँ।

जिनका स्वर जीवन का स्वर है जन जन को हर्षाने वाला
जन-जन की चेतना जगा कर जग-जीवन समझाने वाला
जीवन का प्रताप जिनके प्रत्येक कार्य से सन्दीपित है
मैं सगर्व सोल्लास निरन्तर उन लोगों का गुण गाता हूँ।

जिन लोगो ने संघर्षों में कभी हार को हार न माना
मरते रहे परन्तु जिन्होंने मृत्यु प्रहार प्रहार न माना
जिनके अप्रतिहत साहस की क्षण-क्षण लिखते रहे कहानी
मैं सगर्व सोल्लास निरन्तर उन लोगों का गुण गाता हूँ

जिन लोगो ने जीवित रहते कभी न अत्याचार सहा है
अत्याचार से नहीं जिनका रंच मात्र सम्बन्ध रहा है
जिनका तेज तेज औरों का बन्धु-भाव से रहा बढ़ाता
मैं सगर्व सोल्लास निरन्तर उन लोगो का गुण गाता हूँ।

चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती

चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती
मैं जब पढ़ने लगता हूँ वह आ जाती है
खड़ी खड़ी चुपचाप सुना करती है
उसे बड़ा अचरज होता है:
इन काले चीन्हों से कैसे ये सब स्वर
निकला करते हैं

चम्पा सुन्दर की लड़की है
सुन्दर ग्वाला है गायें–भैसें रखता है
चम्पा चौपायों को ले कर
चरवाही करने जाती है

चम्पा अच्छी है
चचल है
न ट ख ट भी है
कभी कभी ऊधम करती है
कभी कभी वह कलम चुरा देती है
जैसे तैसे उसे ढूँढ कर जब लाता हूँ
पाता हूँ—अब कागज गायब
परेशान फिर हो जाता हूँ

चम्पा कहती है:
तुम कागद ही गोदा करते हो दिन भर
क्या यह काम बहुत अच्छा है
यह सुन कर मैं हँस देता हूँ
फिर चम्पा चुप हो जाती है

उस दिन चम्पा आई, मैंने कहा
चम्पा, तुम भी पढ लो
हारे गाढे काम सरेगा
गाँधी बाबा की इच्छा है—
सब जन पढना-लिखना सीखें
चम्पा ने यह कहा कि
मैं तो नहीं पढूंगी
तुम तो कहते थे गाँधी बाबा अच्छे हैं
वे पढने लिखने की कैसे बात कहेंगे
मैं तो नहीं पढूंगी।

मैंने कहा कि चम्पा, पढ लेना अच्छा है
ब्याह तुम्हारा होगा, तुम गौने जाओगी,
कुछ दिन बालम संग साथ रह चला जायगा जब कलकत्ता
बडी दूर है वह कलकत्ता
कैसे उसे सँदेसा दोगी
कैसे उसके पत्र पढोगी
चम्पा पढ लेना अच्छा है ।

चम्पा बोली. तुम कितने झूठे हो, देखा,
हाय राम, तुम पढ लिख कर इतने झूठे हो
मैं तो ब्याह कभी न करूँगी
और कहीं जो ब्याह हो गया
तो मैं अपने बालम को सँग साथ रखूँगी
कलकत्ता मैं कभी न जाने दूँगी
कलकत्ते पर बजर गिरे ।

